नेहरू बाल पुस्तकालय

पुस्तकों का अनोखा संसार

सेम्युएल इज़्राइल
अनुवादक
डॉ० मस्तराम कपूर



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अबीगेल, आफरीन, अवीवा, अनीता, अंजाल, लिन, मारिस, मीनल, रेशल एलिजाबेथ, साराह जुलियट, शैरियार, साइमन, सायल, जिल्का व ज़िमरा के लिए

—सेम्युएल इज्राइल

इस पुस्तक में प्रयुक्त चित्रों के लिए हम निम्नांकित व्यक्तियों और संस्थाओं के आभारी हैं।

टी. एस. सत्यन, गुरदियाल सिंह, कपिला वात्स्यायन, पुरातत्व सर्वेक्षण, राष्ट्रीय संग्रहालय, यूनेस्को कूरियर, ज्यूविश वेल्फेयर सोसायटी, नयी दिल्ली, हर्बर्ट कागेरर, इंद्रप्रस्थ प्रेस, पी. एन. आहूजा, अभिनव पब्लिकेशंस, मोना चौधरी, माडर्न स्कूल एवं राष्ट्रीय पुस्तकालय।

1984 (शक 1906)
रु. 2.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित और शुचि प्राईवेट लिमिटेड, 1-ई, झंडेवालान नयी दिल्ली 110055 द्वारा मुद्रित।



पुस्तकें कैसे बनती हैं

पुस्तकें कई प्रकार की होती हैं। स्कूल का होमवर्क करने के लिए अभ्यास-पुस्तकें, चित्रकारी पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकें, चित्र-पुस्तकें, डायरी, कापियाँ, बही-खाते कला-पुस्तकें, कामिक्स, ये सभी पुस्तकें हैं। पुस्तक किसी भी विषय पर हो सकती है—इतिहास भूगोल, गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, अंतरिक्ष यात्रा, खोज, प्रकृति, नक्षत्र विज्ञान, पाक-शास्त्र, फुटबाल, क्रिकेट, पर्वतारोहण आदि। पुस्तकों के विषय का कोई अंत नहीं। पुस्तकों के बारे में भी पुस्तकें होती हैं और यह पुस्तक इसी प्रकार की है।

तुम्हारा शब्द-कोश एक बड़ी पुस्तक है जिसकी जिल्द शायद मोटे गत्ते और कपड़े की होगी। कामिक जिसे तुमने अपने मित्र से पढ़ने के लिए लिया, चिकने और चमकदार कागज के आवरण का होता है। तुम्हारी इतिहास की पुस्तक का आवरण पतले कार्ड का हो सकता है। कुछ पुस्तकें धागे से सी जाती हैं। कुछ की पीछे से तार द्वारा सिलाई की जाती है, जैसे तुम इस पुस्तक को देखते हो।

पुस्तक किन-किन चीजों से बनती है यह जानने के लिए पुस्तकों पर नजर डालना ही काफी होगा। कागज-गत्ता, कार्ड, स्याही और कुछ ध्यान से देखो तो गोंद और धागा भी। इन सब चीजों को कारीगर हाथ या मशीनों से इकट्ठा करते हैं। यह काम छपाई प्रेसों और जिल्दसाजों के कारखानों में किया जाता है (जहां छपे हुए पन्नों को क्रम से रखकर बाँधा जाता है और जिल्द चढ़ायी जाती है।)



अभ्यास-पुस्तकों और चित्रकारी की पुस्तकों आदि को छोड़ दिया जाये तो बाकी सभी प्रकार की पुस्तकों के निर्माण में सबसे पहली ज़रूरत अगर किसी चीज की होती है तो वह है—एक विचार या अनुभूति। यह विचार या अनुभूति लेखक या कलाकार या दोनों के मन-मस्तिष्क की चीज है। हम सबसे पहले इसी चीज की चर्चा करेंगे।

अमृतसर के स्वर्ण मंदिर मे सिक्खों की पवित्र पुस्तक 'गुरु ग्रथ साहिब' की पाडुलिपि की प्रति, जो निश्चय ही ससार की बडी पुस्तको मे से एक है।



बोलती पुस्तकें

लेखक पुस्तक कैसे लिखता है? ज्यादातर लोग इसलिए लिखते हैं कि उन्हें कोई मज़ेदार या महत्वपूर्ण बात कहनी होती है। उनके पास सुनाने के लिए एक अच्छी कहानी या कोई रोचक अनुभव होता है। दूसरे लोग उनकी बातों से सहमत हों या नहीं, उन्हें इस बात का विश्वास होता है कि जो बात वे कहना चाहते हैं, वह ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचे और वे भी उससे आनंद या लाभ उठायें।

छह-सात हजार साल पहले जिन लोगों में अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की इच्छा पैदा हुई (जिसे विद्वान लोग सम्प्रेषण की इच्छा कहते हैं), उनके पास बातचीत के अलावा कोई दूसरा साधन नहीं था। लेखन-कला का या तो उदभव नहीं हुआ था या वह प्रारंभिक अवस्था में थी। उस समय बड़े-बड़े विचारक, शिक्षक या कथावाचक जगह-जगह घूमकर अपनी बात या कहानी दूसरों को सुनाते थे या लोग उनके पास आकर सुना करते थे। शिष्य उनकी बातों को कंठस्थ करके दूर-दूर तक फैलाते थे। अक्सर उनके विचार या कहानियाँ लंबी कविताओं के रूप में होती थीं। इन कविताओं को गाथा कहा जाता था। कविता में इन्हें याद रखना भी

आसान होता था और सुनने में भी अधिक आनंद आता था।

हमारे वेद, गीता और रामायण के ग्रंथ और दूसरा प्राचीन साहित्य सैकड़ों वर्षों तक इसी तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहा और बहुत बाद में जाकर पुस्तक रूप में लिखा गया। इसी प्रकार बुद्ध और महावीर की शिक्षा सारे भारत में फैली। बुद्ध धर्म तो चीन जापान और मध्य एशिया तक फैला।

शब्दों की यह यात्रा हमारे देश में, विशेषकर ग्राामीण क्षेत्रों में, आज भी चल रही है। रामायण, गीता और महाभारत की कहानियाँ आज भी घुमंतू कवि गायकों द्वारा सारे भारत में सुनाई जाती हैं। हमारे देश में और एशिया तथा अफ्रीका के

भारत में मौखिक शिक्षा की परपंरा

देशों में भी बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके पास कोई लिपि नहीं है। ये लोग अपने ज्ञान, विचार, संस्कृति, कानून, रस्मो-रिवाज़, विश्वास और अपनी कथाओं को सुरक्षित रखने के लिए लेखन-कला पर निर्भर नहीं हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए वे मौखिक परंपरा का ही सहारा लेते हैं। लेकिन यह स्थिति बड़ी तेजी से बदल रही है।

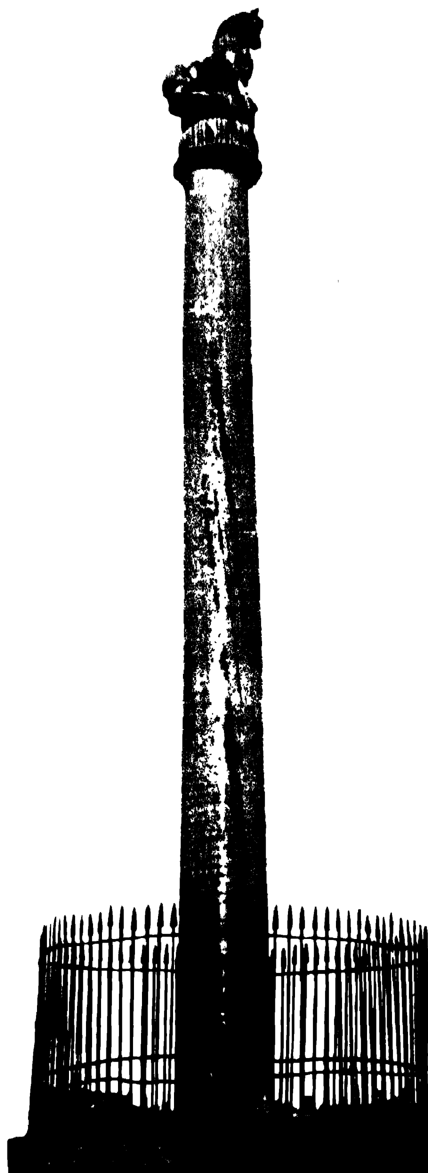
हमारे बीच अब भी घुमंतू चारण मौजूद है।



लिखित पुस्तकें

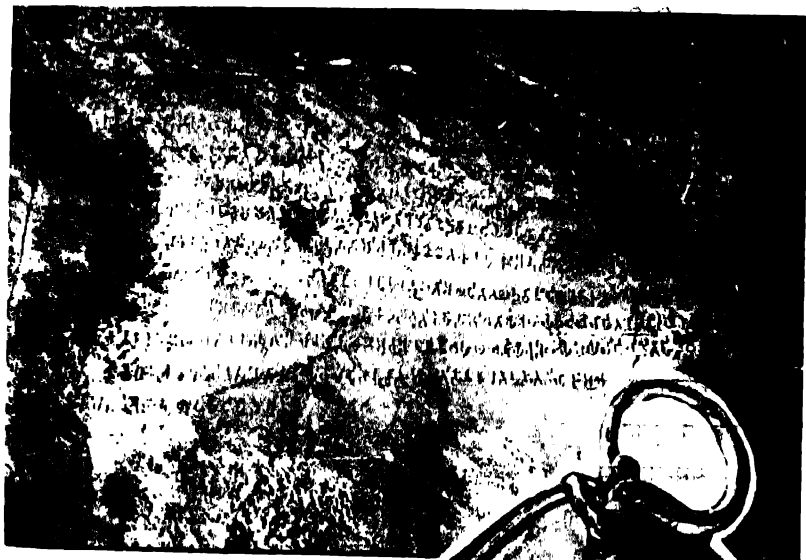
जब लेखन-कला (लिपि) का विकास हुआ तो शब्दों की यात्रा बहुत सरल हो गयी। लोगों को जो कुछ कहना होता था उसे या तो वे स्वयं लिखते थे या दूसरे लोग उसे लिख देते थे। इस तरह उनकी बात भविष्य के लिए सुरक्षित रहती थी और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक जगह से दूसरी जगह तक पहुँचती थी। अब समस्या उस वस्तु की थी जिस पर सुविधा से लिखा जा सके और जो एक व्यक्ति से दूसरे के पास आसानी से जा भी सके। विश्व के अधिकांश भागों में कागज की अभी खोज नहीं हुई थी।

एक बार जो चीज लिखी जाती थी उसकी प्रतिलिपि कई बार की जा सकती थी। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में एक ही लेख के पाए जाने के सबसे प्राचीन उदाहरण हैं सम्राट अशोक के वे प्रसिद्ध शिलालेख, जो कई स्थानों पर शिलाओं अथवा पाषाण-स्तम्भों पर खुदे मिलते हैं।

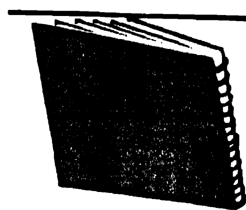


अशोक-स्तंभ। अभिलेख निचले हिस्से पर है जिसे बाद मे लगाये जंगले ने कुछ-कुछ छिपा लिया है।

शिला पर अंकित अशोक के फरमान का एक भाग।



दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में संग्रहीत ताम्र-पत्र सामग्री। इसकी स्पीरल जिल्दसाजी की ओर ध्यान दीजिए। इसकी जिल्दसाजी भी कुछ वैसी ही है जैसी कि साथ दर्शायी गयी पुस्तक की है।





जब तांबे की खोज हुई तो ताम्रपत्रों पर लिखा जाने लगा। इन ताम्रपत्रों को छल्लों से बाँधा जाता था। आजकल भी कुछ पुस्तकें इसी तरह बंधी हुई मिलती हैं। ये ताम्रपत्र महत्वपूर्ण अभिलेखों और दस्तावेजों के लिए उपयोग में लाये जाते थे। इन पर दोनों तरफ लिखा जा सकता था।

लेकिन पत्थर और धातु पर लिखना कोई आसान काम नहीं। पत्थर पर खुदाई करने या धातु पर लिखने का काम वही लोग कर सकते थे जिनके पास इसका हुनर होता था। स्याही या रंग इन पर नहीं टिकता और जल्दी ही मिट जाता है। नरम मिट्टी के पाटों पर नोकदार कलम से लिखना बहुत आसान होता था। लिखने के बाद मिट्टी के पाट को भट्ठी में पकाया जाता था जिससे लिखाई पक्की हो जाती थी। पूरी की पूरी पुस्तकें इस प्रकार लिखी और सुरक्षित रखी जाती थीं। इराक में टिग्रिस और यूफ्रेट्स नदियों के बीच की घाटी में 30,000 मृद-पाटों का एक पुस्तकालय मिला था। एक पुस्तक के कई मृद-पाट थे जिन पर उसी तरह संख्या लिखी हुई थी जिस तरह आजकल पुस्तकों पर पृष्ठ संख्या होती है। यह पुस्तकालय अशुरबनिपाल नाम के राजा का बताया जाता है जो लगभग ढाई हजार साल पहले इस क्षेत्र में राज्य करता था।

लेकिन ये मृद-पाट भी लेखक या पाठक के लिए बहुत सुविधाजनक नहीं थे। ज़रा सोचो, ऐसे सौ मृद-पाट अपनी मेज के पास रखने पड़ें या स्कूल ले जाने पड़ें तो क्या हालत होगी !

भारत में इस कठिनाई पर काबू पाने के लिए पेड़ के पत्ते या छाल, जानवरों की खाल या कपड़ा लिखाई के काम में लाया जाने लगा। कपड़ा भी बहुत सुविधाजनक नहीं था। इस पर स्याही फैल जाती थी, इसलिए जल्दी सूखने वाली स्याही काम में आ सकती थी।

कागज के सुलभ होने से पहले भारत में सबसे ज्यादा ताड़ के सूखे पत्ते लिखने और पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ बनाने के काम में लाये जाते थे। आज से चार-पाँच

सौ साल पहले तक जब कागज सुलभ नहीं था, ताड़ के पत्तों को इस काम में लाया जाता था। इस तरह की अनेक पुस्तकें हमारे संग्रहालयों में तथा निजी और सार्वजनिक पुस्तकालयों में रखी हुई हैं।

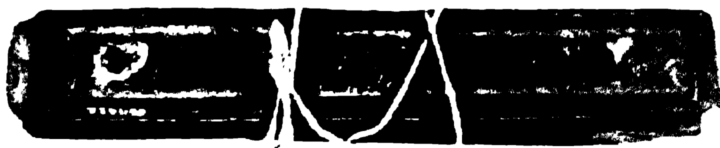
2000 बी. सी. समय की प्राचीन ईराक से प्राप्त एक मिट्टी की तख्ती।



ताड़पत्रों पर लिखने से पुस्तकें अधिक सुरक्षित रखी जा सकती थीं और उन्हें अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सकता था। लेकिन इनका दायरा भी सीमित ही रहता था। हर प्रतिलिपि को बड़े परिश्रम के साथ हाथ से लिखना पड़ता था इसलिए पुस्तकें महंगी भी होती थीं और दुर्लभ भी। कागज के सुलभ होने के बाद भी पुस्तक की प्रतिलिपियाँ बनाने का काम काफी कठिन बना रहा जिसकी वजह से पुस्तकें दुर्लभ तथा महंगी बनी रहीं।

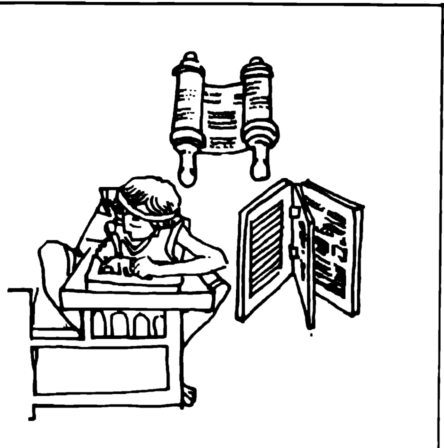
जब पुस्तकें मुश्किल से मिलती हैं तो बहुत से लोगों के लिए साक्षरता या पढ़ने की योग्यता जरूरी चीज नहीं रह जाती। पढ़ने के अवसर इतने कम होते हैं कि लोगों में इस हुनर को सीखने की इच्छा ही नहीं रह जाती । यदि हुनर प्राप्त कर भी लें तो अभ्यास का अवसर न मिलने के कारण वे उसे भूल जाते हैं। इस तरह के लोग अपने ज्ञान का प्रसार करने के लिए मौखिक परपंरा का ही सहारा लेते हैं। ऐसी स्थिति में प्रगति बहुत धीमी होती है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में ताड़-पत्र की एक पांडुलिपि। नीचे वाले चित्र में पढ़ने के लिए पुस्तक को खुला दिखाया गया है। ऊपर वाले चित्र में देखिए कि पुस्तक को कैसे बाँधकर सुरक्षित रखा गया है।









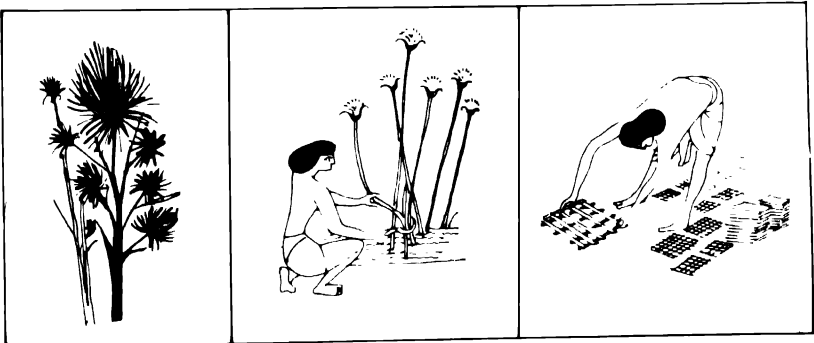
पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ बनाते हुए
ऊपर बायें—प्राचीन मिस्र में पैपीरस कागज लेखन के काम आता था।
ऊपर दायें—प्राचीन यूनान या रोम में पुस्तक की प्रति बनाने के लिए डिक्टेशन लेते समय कोई दास इसी प्रकार दिखाई देता होगा। चीरक (स्क्रोल) और मोम का डिब्बा भी मौजूद है।

नीचे बायें—भारत में प्रायः ताड़-पत्र का प्रयोग होता था।
नीचे दायें—यूरोप में मुद्रण के प्रारंभ से पहले धार्मिक संप्रदायों से संबंधित भिक्षु पुस्तकों की प्रतियां तैयार करने वालों में अग्रणी थे।

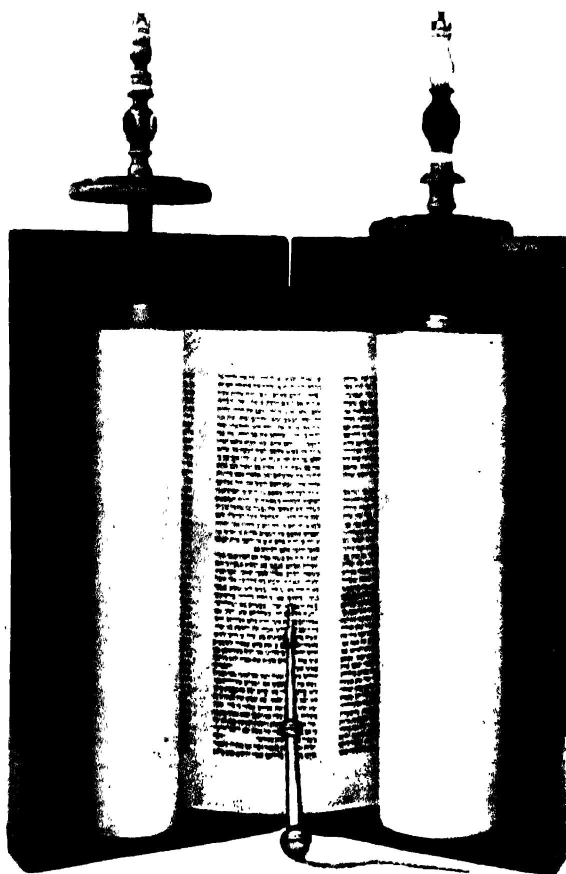
पैपीरस

पाँच-छह हजार वर्ष पहले मिस्र के लोगों ने नील नदी के किनारे उगने वाली एक प्रकार की घास के सरकंडे से कागज बनाया। इस घास को 'पैपीरस' कहा जाता था। इसी से अंग्रेजी शब्द पेपर (कागज) बना है। तेज नोकदार सुई की सहायता से सरकंडों की लंबी पट्टियों को छीला जाता था। इन पट्टियों को साफ, चपटे पत्थर पर साथ-साथ रखा जाता था और फिर उस पर गोंद जैसा घोल फैला दिया जाता था। इस के ऊपर पट्टियों की एक और तह रखी जाती थी दोनों को दबा दिया जाता था। सूखने पर उसे पत्थर, शंख या हड्डी से रगड़कर साफ कर लिया जाता था।

प्राचीन मिस्र मे पैपीरस निर्माता।



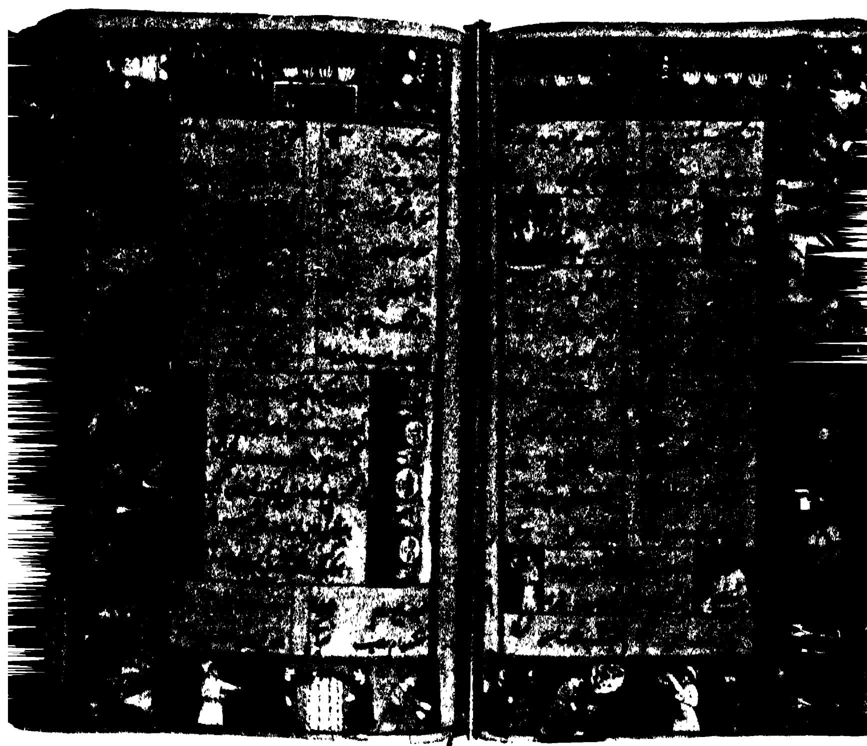
यह कागज प्राचीन मिस्र से भूमध्यसागर के देशों को तथा इससे भी दूरदराज के देशों को जाता था। लेकिन इसकी मात्रा बहुत कम होती थी और कभी-कभी इसके निर्यात पर पाबंदी भी लगा दी जाती थी। यूरोप तथा अरब देशों में इसकी जगह चर्मपत्र का निर्माण किया गया। यह पशुओं की खाल से बनता था और एक विशेष विधि द्वारा इसे लिखने के योग्य बनाया जाता था।



दिल्ली स्थित सिनगॉग (यहूदियों का प्रार्थना-स्थल) में मौजूद एक आधुनिक कागज-चरखी। यह सामग्री जिसकी भाषा प्राचीन हैब्रू है, बाइबल के 'बुक ऑफ लॉ' हिस्से में ली गयी है।

चर्मपत्र लंबे समय तक सुरक्षित रहता है। इस पर लिखे गये कुछ प्राचीन लेख एक हजार साल से अधिक समय बीतने पर भी सुरक्षित पाये गये हैं। सन् 1947 में इज़्रायल के डेड सागर के तट पर एक गुफा में चर्मपत्रों पर लिखे गये बाइबल के कुछ अंश मिले हैं जो यहूदियों की धार्मिक भाषा प्राचीन हिब्रू में लिखे गये हैं। पुरातत्व विशेषज्ञों का विश्वास है कि चर्मपत्रों के ये टुकड़े दो हजार वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। इन्हें अब भी साफ पढ़ा जा सकता है।

एक मुगल बादशाह की आज्ञा पर तैयार किया गया रामायण का फारसी भाषा में सचित्र अनुवाद।



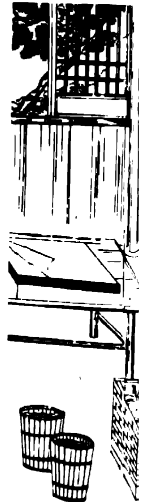
कागज.

कागज़ और छपाई के आविष्कार के बाद हमें पुस्तकें मिलने लगीं। हमारे पड़ौसी देश चीन को कागज और छपाई का ज्ञान दो हजार वर्ष. से भी पहले हो गया था।

चीन का कागज मूल रूप में वैसा ही था, जैसा हमें आज मिलता है। यह लकड़ी या चिथड़ों की लुगदी को सुखा और साफ करके बनाया जाता था। कागज बनाने के लिये घास या बाँस की लुगदी का उपयोग भी किया जाता था।

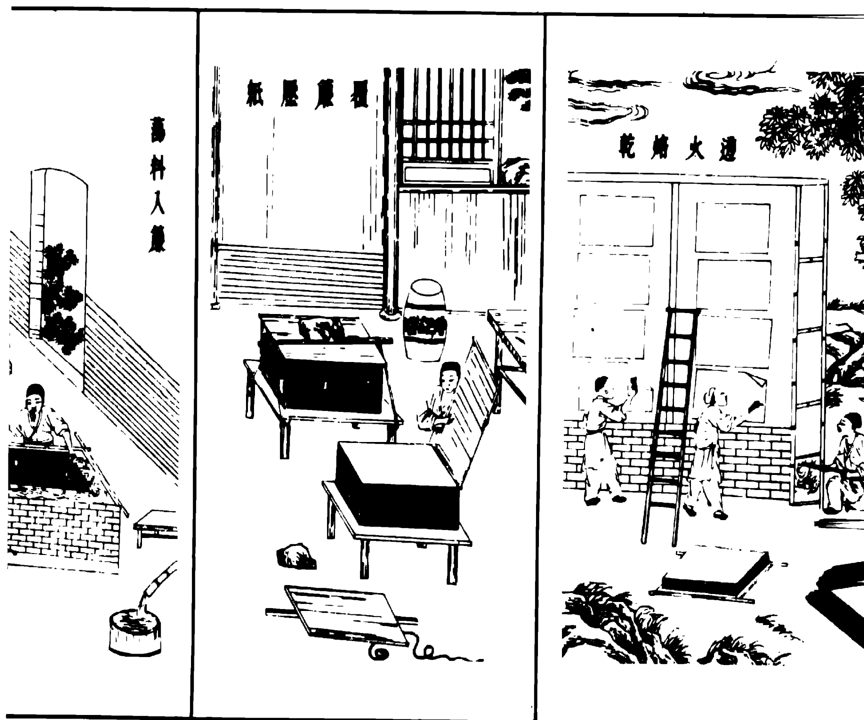






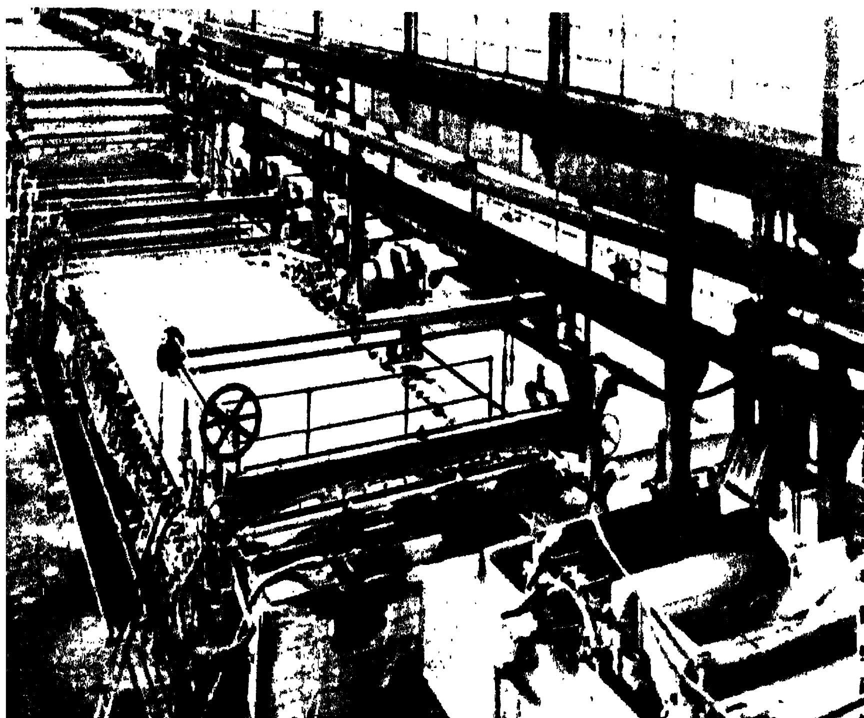
कच्चे माल को पानी में अच्छी तरह भिगोया जाता है। फिर मशीन से कूटकर या रासायनिक क्रियाओं से या दोनों की मिली-जुली विधि से उसकी लुगदी तैयार की जाती है। प्राचीन चीनवासी मशीन से यह काम किया करते थे। कुटाई से या रसायनों से लकड़ी या रूई के रेशे टूटकर छोटे-छोटे हो जाते हैं। फिर एक बड़ी ट्रे जिसके नीचे पतला कपड़ा होता है, लुगदी में रखी जाती है। जब ट्रे को उठाया जाता है तो कपड़े से पानी तो निकल जाता है, लेकिन लुगदी की परत कपड़े के साथ रह जाती है। अब इसे दबाकर सुखाया जाता है और वह कागज बन जाता है।

1637 में प्रकाशित एक चीनी पुस्तक में दिखाई गयी कागज बनाने की पाँच अवस्थाएं।



ऐसा माना जाता है कि कागज बनाने की विधि का ज्ञान भारत को सातवीं शताब्दी तक हो चुका था। पश्चिम की तरफ यह ज्ञान आठवीं शताब्दी में गया। अरब आक्रमणकारियों ने मध्य एशिया के समरकंद नामक स्थान में (जो अब रूस का एक भाग है) चीन के कागज बनाने वाले कारीगरों को पकड़ा और उन्हें अपने साथ ले आये। इनके ज़रिये यह ज्ञान अरब देशों में गया और अरबों ने बारहवीं शताब्दी में इसे यूरोप के देशों में पहुँचाया। यूरोप में एक बार स्थापित होने के बाद इस उद्योग का लगातार विकास होता गया। अन्य उद्योगों की तरह कागज उद्योग का भी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में मशीनीकरण हो गया। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप कागज की माँग में भारी वृद्धि हुई और वह लगातार बढ़ती गयी।

एक आधुनिक भारतीय कागज मिल।







बायें—प्राचीन इंदु घाटी की सभ्यता (लगभग 2000 ई. पू.) के मुख्य स्थानों में से एक—मोहन जोदड़ो। वहां से प्राप्त मुहरों में से एक।
दायें—एक लकड़ी का ब्लाक और उसका छपा हुआ चित्र।

मुद्रण

मुहरों और ब्लाकों से हाथ की छपाई की कला बहुत पुरानी है। यह छपाई वैसी ही होती थी जैसे लकड़ी के साँचों से आज भी साड़ियों पर ड़िजाइन छापे जाते हैं। एक कारीगर जो दो या तीन रंगों में छपने वाले पेचीदा साड़ी-डिज़ाइनों के सांचे बना सकता है, वह बेशक चित्र और लिखाई वाले पूरे पृष्ठ के लिए भी ब्लाक बना सकता है। किंतु लकड़ी के ब्लाक में उकेरी जाने वाली लिखाई आदि शीशे के प्रतिबिंब की तरह उलटी होनी चाहिए ताकि जब छपाई हो तो वह सीधी दिखाई दे, जैसा कि रबड़ की मुहरों में होता है। चीन में लगभग अठारह सौ साल पहले इस विधि से पुस्तकें छापी जाती रही थीं। लकड़ी के ब्लाकों से चित्र और पठनीय सामग्री छापने का काम और स्थानों पर भी होने लगा था, लेकिन बहुत बाद में।

इसमें संदेह नहीं कि इस विधि से बहुत कम पुस्तकें छापी जा सकती थीं। लोग हाथ से नकल करना ज्यादा सुविधाजनक समझते थे। एक पुस्तक के लिए सैकड़ों ब्लाक बनाने पड़ते थे और इसमें बहुत समय और पैसा खर्च होता था। इसके अतिरिक्त लकड़ी पर छोटे-छोटे अक्षरों को उकेरने का काम बहुत कठिन होता था और बड़े आकार में उकेरने का अर्थ था बहुत ज्यादा ब्लाक तैयार करना। इसके साथ-साथ बहुत कम शब्दों वाली पंक्ति और बहुत कम पंक्तियों वाले पृष्ठों को पढ़ना बड़ा उबाऊ होता था।

छपाई के काम में जिस विचार ने बहुत बड़ा परिवर्तन किया, वह था—सारे पृष्ठ को उकेरने की बजाय अक्षरों को अलग-अलग उकेरा जाये और फिर उन्हें सही क्रम में साथ-साथ रखा जाये। आवश्यक स्थान पर खाली जगह छोड़ते हुए और विरामचिह्न लगाते हुए उनसे शब्द, पंक्तियाँ और पृष्ठ बनायें जायें। छपाई की यह विधि आज भी प्रचलित है और इसे टाइप को कम्पोज़ करना कहा जाता है। छपाई के बाद टाइप को अलग किया जा सकता है और फिर दूसरी पुस्तकों की छपाई में तब तक उनका इस्तेमाल किया जा सकता है जब तक वे पूरी तरह घिस न जायें। आज हमें यह बात बहुत आसान लगती है किंतु इस विचार को व्यावहारिक रूप देने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था और अनेक समस्याओं को सुलझाना पड़ा था।



1956 मे जर्मनी मे जारी की गयी टिकट (स्टेम्प) का परिवर्द्धित रूप। यह टिकट बाइबल के गुटेनबर्ग संस्करण की 500 वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष मे जारी की गयी थी। विश्वास किया जाता है कि यह प्राचीन चीन मे बाहर धातु के चल-टाइप द्वारा प्रथम मुद्रित पुस्तक थी।

ऊपर कहा गया है कि लकड़ी के ब्लाकों पर छोटे-छोटे अक्षर उकेरने का काम बहुत कठिन होता है। लकड़ी की तीली के सिरे पर अक्षर बनाना कितना मुश्किल होता होगा। फिर एक पृष्ठ में एक ही अक्षर कितनी बार आता है और सब का टाइप अलग-अलग बनाना पड़ता है। यदि तुम इसी पृष्ठ पर क या स अक्षरों को गिनों तो तुम्हें इस कठिनाई का अनुमान लग सकता है।

किंतु इन सारी कठिनाइयों के बावजूद कुशल चीनियों ने एक हजार साल पहले पकाई गयी मिट्टी से और बाद में लकड़ी, कांसा, टीन आदि से ऐसे ही चल-टाइप बनाये। लेकिन इसका इस्तेमाल कभी-कभार ही होता था। निश्चिय ही इसके चल-टाइप बनाये। बहुत सी कठिनाइयाँ आयी होंगी, इसलिए वहां मुख्य रूप से छपाई लकड़ी के ब्लाकों से ही की जाती रही।

[illegible]

गटनबर्ग की बाइबल का एक पृष्ठ। इसकी भाषा शास्त्रीय लैटिन है जो उस समय धार्मिक और विज्ञान संबंधी पुस्तकों के लिए प्रचलित थी।

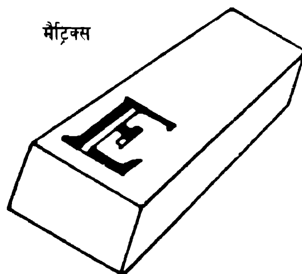
धातु के चल-टाइप

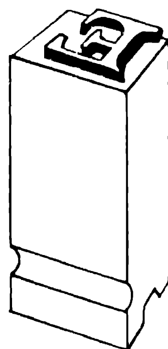
धातु संबंधी विज्ञान तथा कला की प्रगति से और जर्मनी के जोहन्न गुटनबर्ग नामक व्यक्ति की प्रतिभा से सन् 1450 के आसपास आखिर यह समस्या सुलझ ही गयी।

गुटनबर्ग ने कठोर इस्पात के तीलीनुमा टुकड़े के सिरे पर प्रत्येक अक्षर को उकेरा। इसे 'पँच' (छेदक) कहा जाता है। इस पंच को उसने ताँबे या पीतल के पतरे पर रखा और ऊपर से भारी हथौड़े से उसे दबाया। इस तरह पतरे पर अक्षर की दर्पण-छवि बन गयी। इस पतरे को 'मैट्रिक्स' नाम दिया। मैट्रिक्स को 'मोल्ड' (सांचे) पर फिट करने के बाद उसमें पिघला हुआ धातु डाला गया। धातु ठंडा होकर टाइप का रूप ले लेता था जिस पर अक्षर की दर्पण-छवि अंकित थी।

तुम देख सकते हो कि अब एक ही सांचे से बहुत से टाइप ढल सकते हैं और एक मैट्रिक्स से कई सांचे बनाकर कई लोगों को दिये जा सकते हैं। धातु के टाइप को शब्दों और पंक्तियों में कम्पोज़ किया जा सकता है। उनके पृष्ठ बनाकर छापा जा सकता है और फिर अलग-अलग करके बाद में तब तक इस्तेमाल किया जा सकता है जब तक वे पूरी तरह घिस न जायें। घिसे हुए टाइप को भी पिघलाकर फिर से टाइप में ढाला जा सकता है।







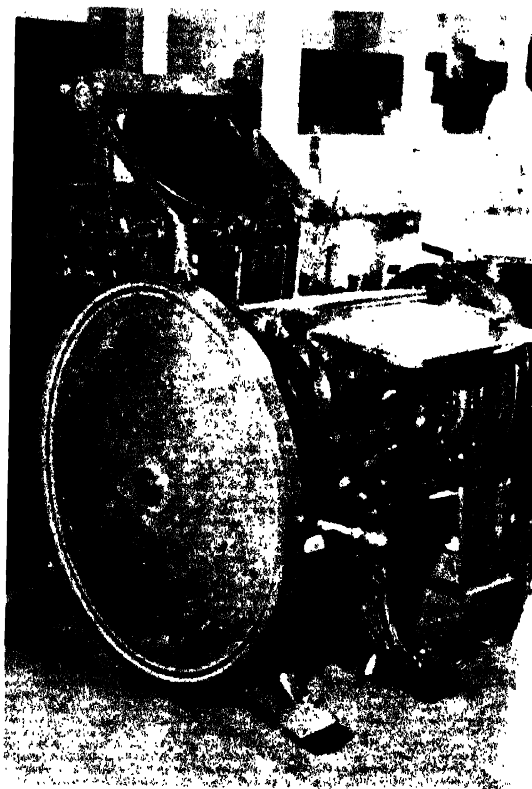
कम्पोज़ की गयी सामग्री को छपाई के लिये उसे प्रेस के बेड से कसकर बाँधा जाता था ताकि टाइप इधर-उधर बिखर न जायें। टाइप के ऊपरी हिस्से पर स्याही लगायी जाती थी और उस पर सावधानी से निर्धारित जगह पर कागज रखा जाता था। इसके बाद हाथ से चलने वाली मशीन से कागज को स्याही लगे टाइप पर दबाया जाता था। दाब को हटाने के बाद कागज को उठाकर सूखने के लिए अलग रख दिया जाता था। इसी तरह एक-एक करके ज़रूरत के अनुसार कागज के पन्ने छापे जाते थे।

अब तुम जान गये होगे कि छपाई की मशीन को प्रेस क्यों कहते हैं। छपाई के लिए स्याही लगे टाइप पर कागज को प्रेस करना या दबाना पड़ता है।

गुटनबर्ग के समय से मुद्रण-कला में बड़ी तेजी से विकास हुआ है। कम्पोजिंग और मुद्रण दोनों में हाथ से काम करने की सारी विधियाँ एक-एक करके खत्म हो गयी हैं। मशीनें अब अधिक तेजी से काम करती हैं और अच्छी मशीनों के कारण छपाई के स्तर में लगातार सुधार हुआ है। मशीनों का आकार भी बहुत बड़ा हो गया है और उद्योगों की दृष्टि से आगे बढ़े हुए देशों में बड़ी-बड़ी पेचीदा मशीनें एक साथ काम करती हैं। उदाहरण के लिए एक तरफ से कागज के बड़े-बड़े रोल

डाले जाते हैं और दूसरी तरफ बिना हाथ लगाये पेपरबेक पुस्तकें छपकर बाहर आ जाती हैं। सिर्फ कम्पोज़ की हुई सामग्री की प्लेटें फिट करनी पड़ती हैं और मशीन को ठीक बिठाना पड़ता है। पिछले दस-पंद्रह वर्षों में जो सुधार हुए हैं उनसे तो धातु के टाइप की ज़रूरत भी खत्म हो गयी है। जो भी हो, धातु के टाइप से पुस्तकों को छापने की विधि अब भी बहुत प्रचलित है, विशेषकर हमारे देश में।

पुस्तकों के निर्माण का संक्षिप्त वर्णन करने से पहले हमें एक बार लेखक पर लौटना होगा जिसे हमने पुस्तक के शुरू में व्यापक संप्रेषण की तलाश में छोड़ दिया था।



आठ वर्ष से भी ज्यादा पुरानी इस प्रकार की छोटी मुद्रण मशीने पूरे भारत मे सैकड़ों प्रेसों में अब भी काम में लायी जा रही हैं। इन्हे पहले ट्रेडल सिलाई मशीन की तरह पाँव के पैडल से चलाया जाता था। इसी से इसका नाम ट्रेडल पड़ा। आजकल ये मशीनें चित्र में दर्शाई गई मशीन की तरह ज्यादातर बिजली की मोटर से चलाई जाती हैं।

लेखक, प्रकाशक और कापी राइट

मुद्रण और कागज के आविष्कार से बहुत कम परिश्रम और बहुत कम समय में एक पुस्तक की अनेक प्रतियां छापना संभव हो गया। किंतु यह उन बड़े-बड़े मुद्रणालयों में ही संभव है। इनकी मशीनों और सामान पर बहुत खर्च होता है और वहां कई लोग काम करते हैं। कागज, जिल्दसाज़ी और दूसरे सामान के लिए बहुत ज्यादा खर्च करना पड़ता है। यदि लेखक के पास पुस्तक छापने के लिए पैसा हो, तो भी उसके लिए पुस्तक की ज्यादा प्रतियां बेचना संभव नहीं है।

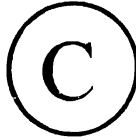
यहाँ प्रकाशक सामने आता है। लेखक कुछ रकम के बदले प्रकाशक को यह अधिकार देता है कि वह पुस्तक को छापे, प्रकाशित करे (अर्थात लोगों को पुस्तक उपलब्ध कराये) और उसे बेचे। प्रकाशक इस आशा से इस काम को लेता है कि पुस्तक बेचने से उसे लाभ होगा। अतः प्रकाशक एक व्यवसायी होता है जो लाभ की आशा से पुस्तक के प्रकाशन में पैसा लगाता है। दूसरी वस्तुओं के निर्माताओं की तरह उसे न केवल पुस्तकों के निर्माण की व्यवस्था करनी पड़ती है बल्कि उनकी बिक्री और वितरण का प्रबंध भी करना पड़ता है। पुस्तकों की बिक्री मुख्य रूप से पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा की जाती है।

हमने अभी बताया कि लेखक प्रकाशक को अपनी पुस्तक छापने का अधिकार देता है। इसका अर्थ है कि पुस्तक की प्रतियां करने और लोगों को उपलब्ध कराने का अधिकार केवल लेखक के पास होता है। लेखक के इस अधिकार की कानून रक्षा करता है। हमारे देश में भी और लगभग सभी दूसरे देशों में भी इस अधिकार को 'कापीराइट' अधिकार कहते हैं। लेखक के पास सारी उम्र यह अधिकार रहता है और उसकी मृत्यु के बाद पचास वर्ष तक यह अधिकार उसके उत्तराधिकारियों के पास रहता है। पचास साल बाद कोई भी व्यक्ति बिना किसी की अनुमति लिए उस पुस्तक की प्रतियां तैयार कर सकता है। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तकों पर अभी भी कापीराइट है क्योंकि उनका स्वर्गवास सन् 1941 में हुआ था जबकि लोकमान्य तिलक की पुस्तकों पर जिनका स्वर्गवास सन् 1920 में हुआ था, अब कापीराइट नहीं है।



यह आफसेट मुद्रण मशीन क्रमानुसार चार रंग की छपाई कर सकती है। चित्र मे चार गलरों के सेट देखे जा सकते हैं। कुछ मशीनें एक कागज के दोनो तरफ एक ही समय मे छपाई कर सकती हैं। इस तरह की मशीन रोल पर लिपटे लंबे कागज पर छपाई करती हैं, जिन्हे पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। कागज के कुछ ढेर इस चित्र में दायें कोने में ट्रालीं पर देखे जा सकते है जो जिल्दसाजी विभाग में ले जाये जा रहे हैं।





अतर्राष्ट्रीय सर्वाधिकार (कापीराइट) का प्रतीक। इसे किसी प्रकाशित पुस्तक में कापीराइट के अधिकारी के नाम और पुस्तक लेखन अथवा छापने के वर्ष के साथ छापने से उन सभी देशों में उसका कापीराइट सुरक्षित रहता है-जो अतर्राष्ट्रीय कापीराइट कनवेशन के सदस्य हैं।

लेखक के पास हमेशा से कापीराइट का अधिकार नहीं रहा। वास्तव में मुद्रण और प्रकाशन के विकास से पहले इसकी ज़रूरत भी किसी को महसूस नहीं हुई। जब पुस्तक की अनेक प्रतियां छापना और लाभ पर बेचना संभव हुआ तभी लेखकों के कापीराइट की सुरक्षा की आवश्यकता महसूस हुई।

कापीराइट जहाँ लेखक के अधिकार की रक्षा करता है, वहीं प्रकाशक के अधिकार की भी रक्षा करता है। जब किसी प्रकाशक को पुस्तक छापने का अधिकार मिल जाता है तो कोई दूसरा व्यक्ति उसे नहीं छाप सकता।

अधिकांश देश इस बात पर सहमत हैं कि एक-दूसरे देश के लेखकों के अधिकारों की रक्षा की जाये। किंतु कुछ देश अभी कापीराइट के अधिकार को नहीं मानते। लेकिन अपने देश के लेखकों के अधिकारों को देश में सुरक्षित रखने के लिए सबने कानून बनाये हैं।

पुस्तक-विक्रेता की कमीशन

प्रकाशक अपनी पुस्तकों को बेचने के लिए पुस्तक-विक्रेताओं को छपी कीमत से कम कीमत पर पुस्तकें बेचता है। जब प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता को 25 प्रतिशत कमीशन देता है तो वह 10 रुपये की पुस्तक उसे 7.50 रुपये में देता है। जब पुस्तक-विक्रेता उसे 10 रुपये में बेचता है तो उसे 2.50 रुपये का लाभ मिल जाता है।

लेखक की रायल्टी

प्रश्न है कि लेखक को अपना पारिश्रमिक कैसे मिलता है ?

प्रकाशक किसी लेखक को उसकी पुस्तक छापने और बेचने के बदले जो पारिश्रमिक देता है, उसका सबसे प्रचलित रूप है रायल्टी। रायल्टी का अर्थ है वह भुगतान जो किसी के विचार या रचना के इस्तेमाल के लिए उसे दिया जाये। पुस्तकों की रायल्टी कुल बिक्री पुस्तक की कीमत के प्रतिशत आधार पर होती है। इसलिए पुस्तक की जितनी ज्यादा प्रतिया बिकती हैं उनकी रायल्टी भी उतनी ज्यादा बनती है। उदाहरण के लिए 10 रुपये कीमत की पुस्तक पर 10 प्रतिशत के हिसाब से एक रुपया रायल्टी हुई। अर्थात प्रकाशक जितनी प्रतियां बेचेगा उस पर एक रुपया प्रति पुस्तक के हिसाब से लेखक को देगा। मुद्रण और प्रकाशन के विकास के बाद ही लेखक के लिए पैसा कमाना और कभी-कभी अपनी रचना की आय पर जीवन-निर्वाह करना संभव हो सका।

यदि लेखक और प्रकाशक सहमत हों तो लेखक के पारिश्रमिक के भुगतान का एक दूसरा तरीका भी हो सकता है। उदाहरण के लिए छापी जाने वाली या बिकने वाली प्रतियों की संख्या का विचार किए बिना लेखक को एक निश्चित राशि भी दी जा सकती है। एक निश्चित संख्या में प्रतियां छापने के लिए भी एक निश्चित राशि तय की जा सकती है, चाहे उनकी बिक्री हो या न हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रकाशक जब तक पुस्तक छापने का सारा खर्च बिक्री से न निकाल ले तब तक लेखक को कुछ न दिया जाये और उसके बाद पुस्तक से होने वाला लाभ प्रकाशक तथा लेखक में बंट जाये।

प्रकाशक पुस्तक की कीमत को निश्चित करते समय प्रकाशन की लागत और अन्य खर्चों के साथ-साथ पुस्तक-विक्रेता की कमीशन और लेखक की रायल्टी को भी जोड़ लेता है।



[illegible]

प्रकाशक और मुद्रक

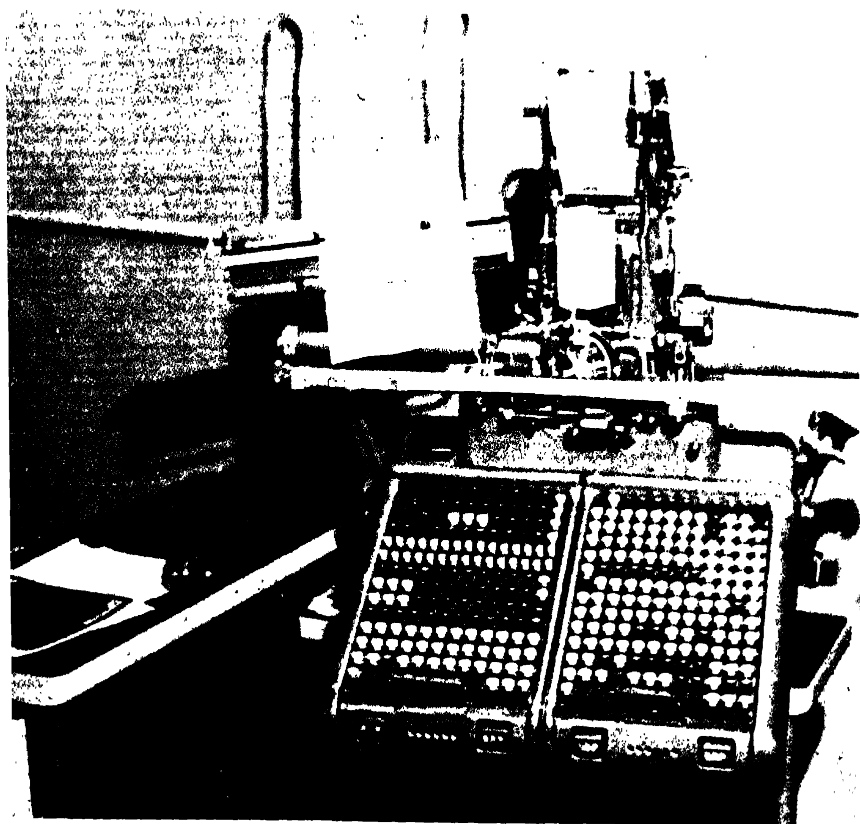
प्रकाशक अपने यहां संपादक रखता है। संपादक का काम प्रकाशक को यह सलाह देना है कि कौन सी पुस्तकें प्रकाशन के लिए स्वीकार की जायें। इसके साथ ही वह यह भी सलाह देता है कि किस लेखक से किस विषय पर पुस्तक ली जाये। किसी पुस्तक को प्रकाशन के लिए स्वीकार करते समय प्रकाशक दो बातों का ध्यान रखता है। एक तो यह कि पुस्तक अपने विषय की अच्छी पुस्तक है या नहीं और दूसरी यह कि पुस्तक की जितनी प्रतियां छपेंगी वे सब या उनका अधिकांश भाग जल्दी बिक जायेगा या नहीं।

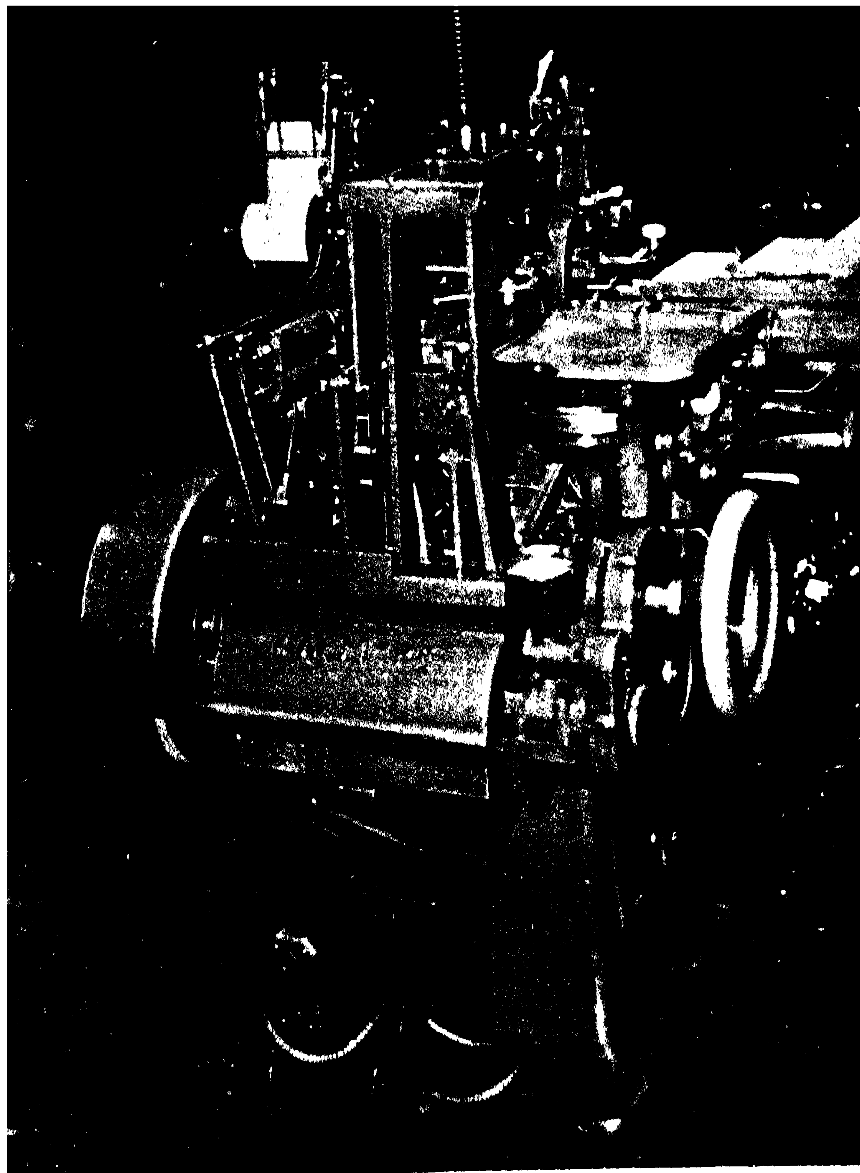
संपादक का दूसरा काम है पुस्तक की प्रेस के लिए पांडुलिपि तैयार करना। जिस तरह के पाठकों के लिए पुस्तक लिखी गयी है, उन्हें ध्यान में रखते हुए वह सारी पुस्तक को पढ़ता है। ज़रूरत हो तो वह लेखक को सुझाव देगा कि पुस्तक में क्या परिवर्तन किये जायें जिससे उसमें कही गयी बात अधिक रोचकता और स्पष्टता से उभरे। वह कुछ हिस्सों को छोड़ने, संक्षिप्त करने या कुछ जोड़ने का सुझाव दे सकता है। इसके साथ-साथ या इसके बाद वह पांडुलिपि को वर्तनी, व्याकरण, एकरूपता और पूर्णता आदि की दृष्टि से देखता है। पांडुलिपि में उचित निशान लगाकर वह मुद्रक को निर्देश भी देता है कि सामग्री किस टाइप में कम्पोज़ की जायेगी। यह काम पुस्तक-संपादन कहलाता है। कापी शब्द पांडुलिपि के लिए तथा कम्पोज की जाने वाली अन्य सामग्री के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

पुस्तक संयोजन और प्रूफ

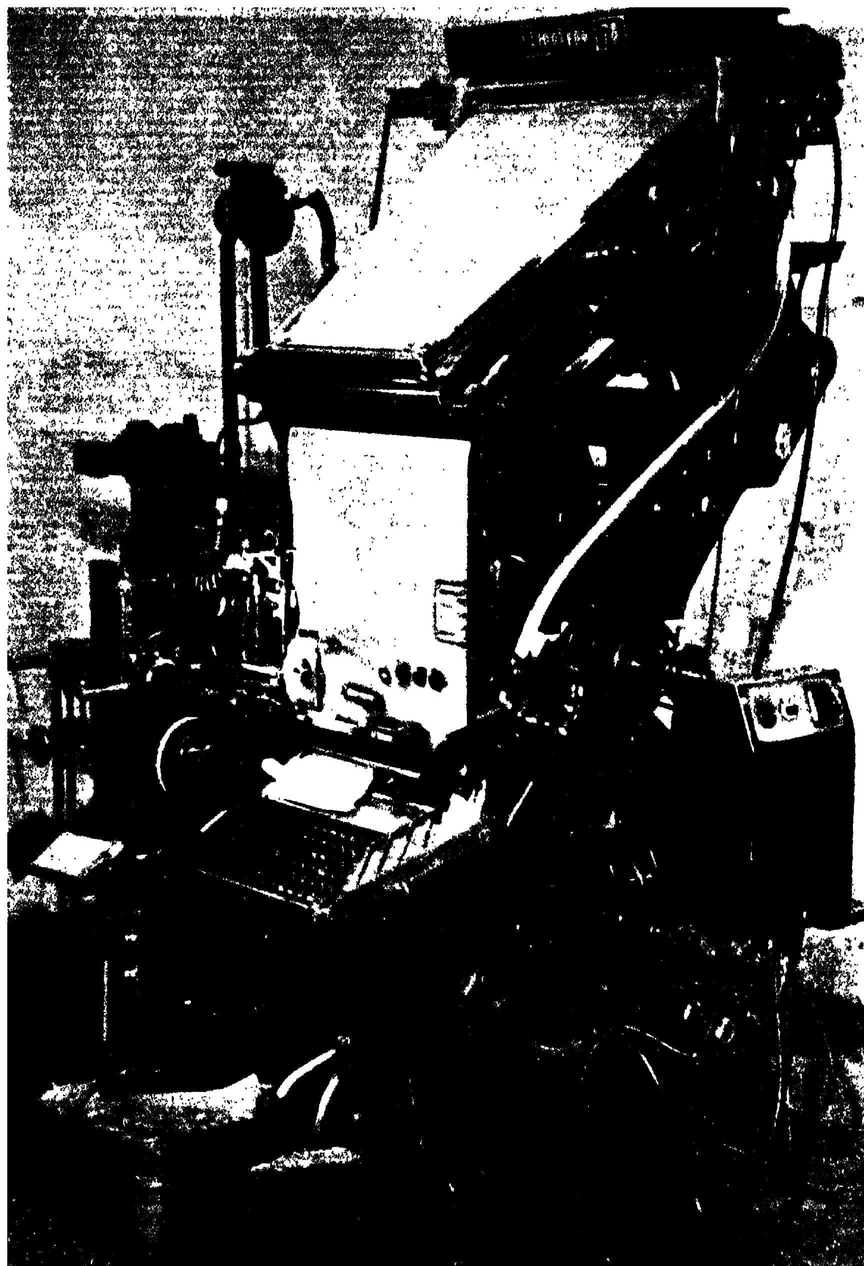
अब प्रकाशन विभाग काम हाथ में लेता है। पुस्तक के सामान्य डिजाइन, और उसे सेट करने के ढंग, पृष्ठों के रूप-आकार तथा अन्य बातों के संबंध ं निर्देशों के साथ अब पांडुलिपि मुद्रक को दे दी जाती है।

मोनोटाइप कम्पोजिंग मशीन का कुंजी पटल (कीबोर्ड)। जैसा कि चित्र मे दिखाया गया है, छिद्र-डिजाइन वाले कागज के रोल पर पंच होता है। रोल से तब टाइप ढलता है जोकि अगले चित्र मे दिखाया गया है।





मोनोटाइप कास्टर। यह मशीन कागज के रोल के आधार पर टाइप को शब्दों में ढालकर उन्हें पंक्तियों में मशीन के ऊपर दायीं तरफ दिखाई दे रही प्लेट में लगा देती है।

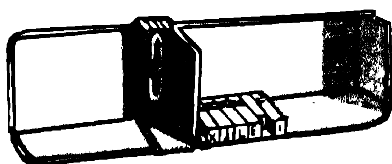


मोनोटाइप फोटोमेटिंग कुंजीपटल।

मुद्रक को सबसे पहले पुस्तक टाइप में कम्पोज़ करनी पड़ती है। हमारे देश में और खास कर भारतीय भाषाओं में यह काम कम्पोजिटरों द्वारा हाथ से किया जाता है जैसे सबसे पहले गुटनबर्ग ने किया था। इस पुस्तक के हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी संस्करणों को छोड़कर शेष भाषाओं के संस्करणों का कम्पोजिंग भी हाथ से हुआ है। किंतु अब लगभग सभी भारतीय भाषाओं में मशीन से कम्पोजिंग का काम व्यापक रूप से होने लगा है। टाइप सेट करने वाली इन मशीनों में टाइपराइटर की तरह का कुंजीपटल (की बोर्ड) होता है। जब इसे टाइप किया जाता है तो अक्षर, शब्द और पंक्तियां अपने आप टाइप में ढल जाती हैं। वास्तव में पिघली धातु से जैसी जरूरत हो, एक-एक अक्षर या एक-एक पंक्ति करके टाइप ढलता जाता है।

लाइनोटाइप टाइपसेटिंग मशीन जो टाइप को पंक्तियों अथवा स्लगों में निर्धारित करती है। ये पंक्तियां तब चित्र के बायीं ओर दिखाई दे रही ट्रे मे चली जाती हैं जो कुंजीपटल के नीचे की तरफ रहती है। ट्रे में से समय-समय पर ये पंक्तियां गैली-ट्रे में भेजी जाती हैं।





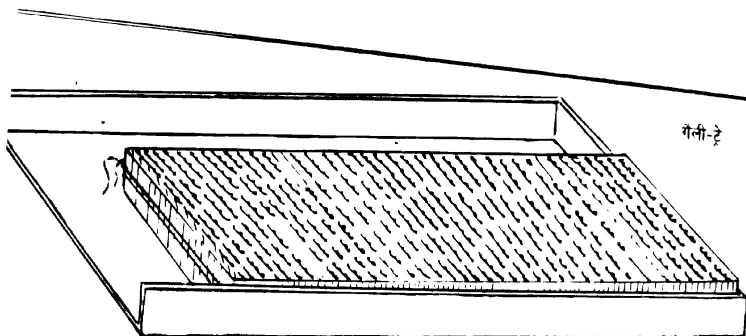
हाथ की कम्पोजिंग में टाइप की पंक्तियों को रखने के काम में लायी जाने वाली स्टिक। हर चार-पाँच पंक्तियों को कम्पोज करके उन्हें गैली-ट्रे मे रख दिया जाता है। गैली-ट्रे के चित्र अगले पृष्ठ पर हैं।

किंतु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, इस क्षेत्र में अब और भी प्रगति हो चुकी है। अब मुद्रण के लिए हाथ का टाइप जरूरी नहीं रह गया है। नयी कुंजीपटल मशीनें टाइप सेट करने की बजाय फिल्म पर पंक्ति-दर पंक्ति फोटोग्राफिक नेगेटिव सेट करती हैं। इस पुस्तक के हिंदी और अंग्रेजी संस्करण इसी तरह फोटो सेट या फिल्म सेट किये गये हैं। संक्षेप में इसका वर्णन आगे किया जायेगा।

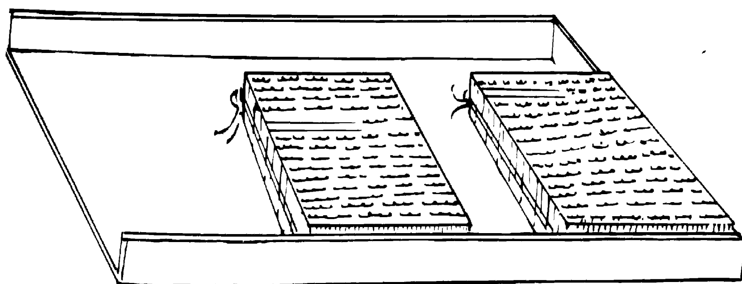
धातु के टाइप में सेट की गयी सामग्री को लंबी तश्तरियों (ट्रे) में रखा जाता है जिन्हें गैली कहते हैं। फोटो सेट की गयी सामग्री नेगेटिव फिल्म की लंबी पट्टियों के रूप में रहती है। टाइप सेट की गयी सामग्री के कच्चे प्रूफ टाइप पर स्याही लगाकर और हाथ से चलने वाले रोलर को ऊपर फिराकर निकाले जाते हैं। फिल्मों के कच्चे प्रूफ सस्ते प्रकाश-संवेदित कागज पर निकाले जाते हैं। ये दोनों ही तरह के प्रूफ गैलीप्रूफ कहलाते हैं। छपने वाली सामग्री की गलतियां जांचने के लिए उसके जो थोड़े से प्रिंट निकाले जाते हैं उन्हें मुद्रकप्रूफ कहते हैं।

गैलीप्रूफ को प्रकाशक भी देखता है और प्रायः लेखक भी। उन पर गलतियां ठीक की जाती हैं। चित्र या देखरेख कहाँ लगेंगे, शीर्षक कैसे और कहां लगेंगे, पृष्ठ की लंबाई-चौड़ाई क्या रहेगी और गैलियों को पृष्ठों में बांटने से संबंधित अन्य ज़रूरी निर्देशों के साथ प्रूफों को मुद्रक के पास वापस भेज दिया जाता है।

पृष्ठ बन जाने के बाद उनके फिर प्रूफ उठाये जाते हैं और उन्हें पढ़ा जाता है। कई बार तीसरा प्रूफ भी पढ़ना पड़ता है। जब प्रकाशक और लेखक पूरी तरह संतुष्ट हो जायें कि सब गलतियाँ ठीक हो गयी हैं या हो जायेंगी तो प्रकाशक मुद्रक को प्रिंट आर्डर देता है।



गैली-ट्रे



पृष्ठों में बँटी गैली।

मुद्रण

प्रिंटिंग प्रेसों में गुटनबर्ग के समय से बहुत परिवर्तन हुए हैं। कुछ बड़े प्रेस तो इस पुस्तक के पृष्ठों जैसे 32 पृष्ठ 86 × 137 मि०मी० आकार के कागज को एक तरफ छाप सकते हैं। इस तरह की मशीन इस पुस्तक जैसी पुस्तक को सिर्फ दो बार में छाप सकती है। एक बार कागज के एक तरफ और दूसरी बार दूसरी तरफ। कुछ ऐसी मशीनें भी हैं जो कागज के दोनों ओर एक साथ या तुरंत बाद छाप सकती हैं। काले-सफेद और आरेख सामग्री के साथ ही छप सकते हैं, किंतु रंगीन चित्रों को अलग प्रक्रिया से छापना पड़ता है।

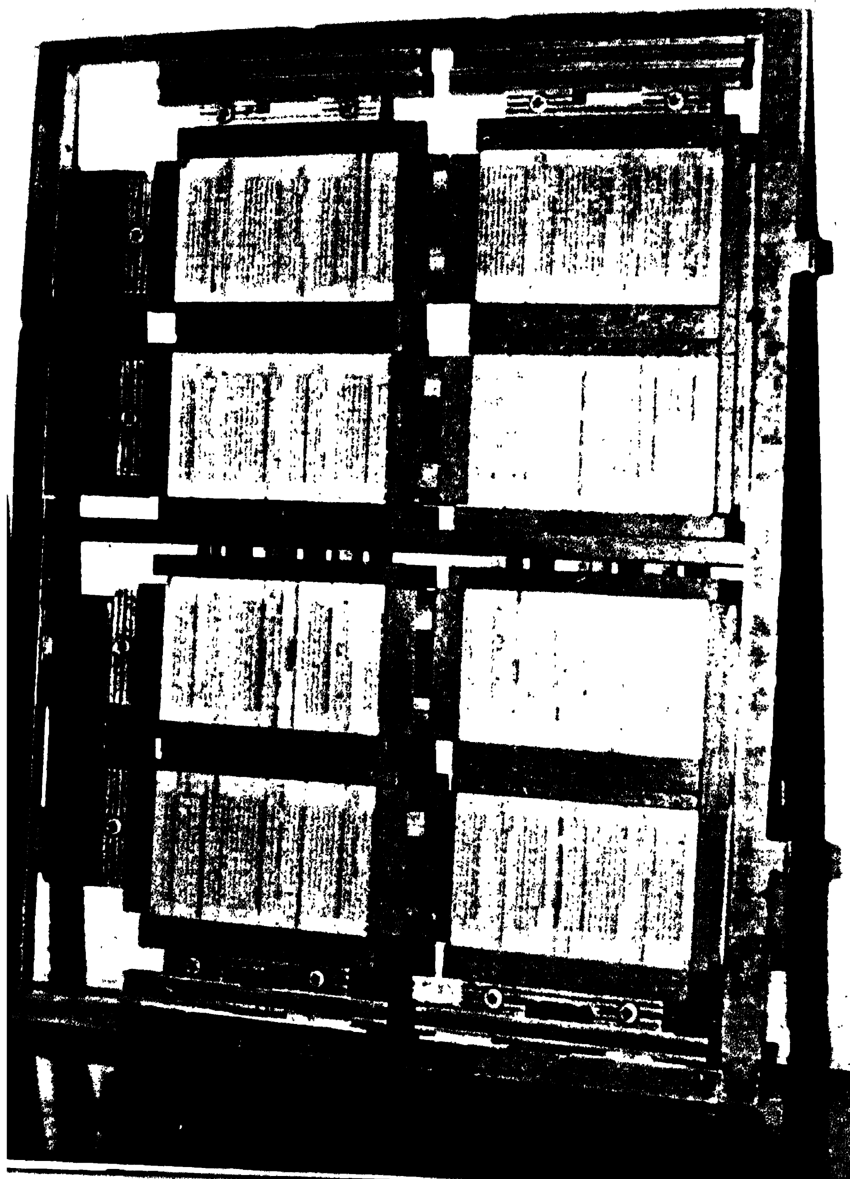
इस सबको सरलता से समझने के लिए हम यह मानकर चलेंगे कि हमारी मशीन एक समय में केवल चार पृष्ठ ही छाप सकती है।



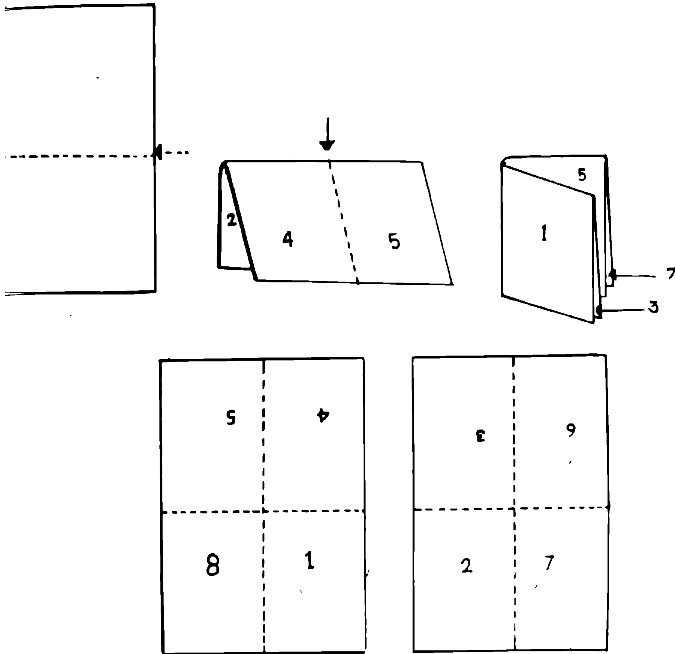


उसी प्रकार की एक आफसेट मशीन जिस पर इस पुस्तक के हिंदी और अंग्रेजी संस्करण तथा सभी संस्करणों के चित्र छपे।

An eight-page forme locked up for printing. Notice the metal furniture combined with the wood. A key fits into the eyes in the circular parts. This is turned to tighten or loosen the metal furniture.



ण के लिए आठ पृष्ठो का तैयार फार्म। लकड़ी और लोहे के तालमेल की ओर ध्यान दे। आसपास आँख तरह दिखाई दे रही जगहो पर एक चाबी फिट होती है जिसे घुमाने से फार्म की सामग्री को कसा या ा किया जा सकता है।



पृष्ठों को तरतीब से लगाना। (नीचे लिखी सामग्री मे दिये गये निर्देशों पर चलें)। नीचे बने कागज पर काले रंग के अंक पृष्ठ संख्या की ओर संकेत करते है। दूसरे रंग के अंक उनके पीछे छपने वाले पृष्ठों की ओर संकेत करते है।

एक आयताकार कागज का पन्ना लो। पहले उसे लंबाई की तरफ से बीच से मोड़ो। इसके बाद चौड़ाई की तरफ से बीच से मोड़ो। अब उसके किनारों को काटे बिना पृष्ठों पर 1 से 8 तक संख्या लिखो। अब पन्ने को पहले की तरह फैला दो। तुम देखोगे कि पन्ने की एक तरफ 1, 4, 5 और 8 संख्याएं होंगी और उनमें से कुछ पृष्ठ ऊपर की तरफ कुछ नीचे की तरफ होंगे। इसी तरह दूसरी तरफ पृष्ठ 2, 3, 6 और 7 होंगे। पृष्ठों की स्थिति ऐसी होगी कि जब उन्हें पृष्ठों में मोड़ा जायेगा तो सब पृष्ठ ठीक क्रम से और ठीक स्थिति में आ जायेंगे। मुद्रक पृष्ठों को

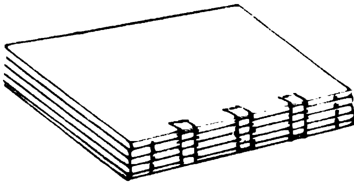
स्टीलफ्रेम में फर्मे के रूप में कसना है तो पृष्ठों को इसी क्रम से लगाता है। वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि पुस्तक के सभी पृष्ठों के एक जैसे हाशिए रहें और आगे-पीछे सामग्री ठीक छपे अर्थात लाइन पर आयें। (पन्ना एक कागज है जिसके आगे पीछे दो पृष्ट होते हैं और अधिकतर इसे दोनों तरफ छापा जाता है।) एक अच्छी छपी हुई पुस्तक को लो और उसके एक पन्ने को प्रकाश के सामने ले जाकर देखो। इस तरह तुम इस सारी सावधानी का परिणाम देख सकते हो। दुर्भाग्य से तुम्हें ऐसी पुस्तकें भी मिल जायेंगी जिन की छपाई में यह सावधानी नहीं बरती गयी है।



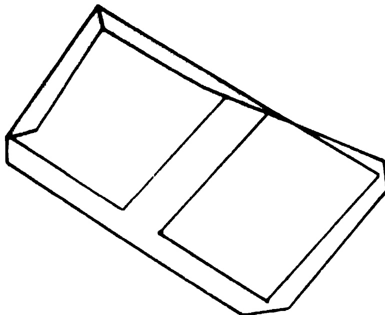
पुस्तक के पृष्ठों के सेटों को तरतीब से लगाते हुए।

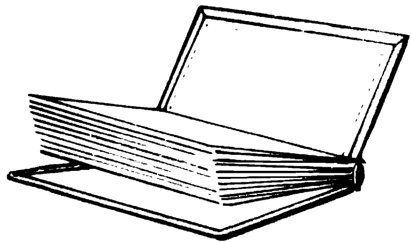
जिल्दसाज़ी

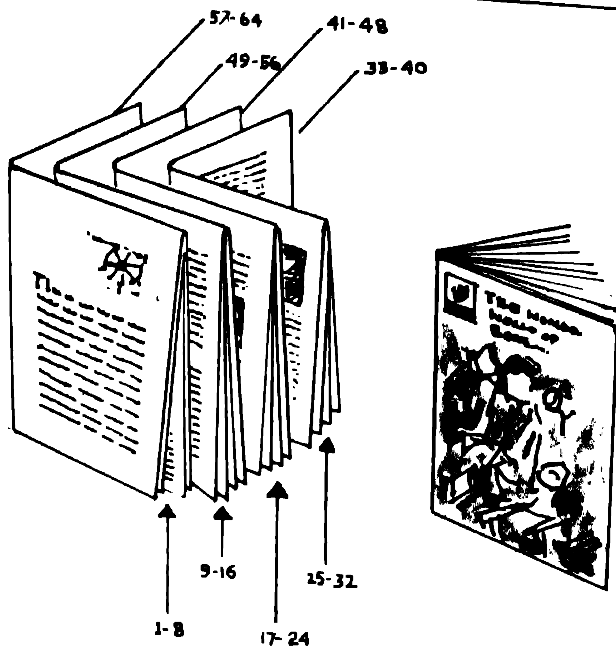
पुस्तक जितनी बड़ी होगी उसके फर्में भी उतने ज्यादा छपेंगे। सब फर्मों के छप जाने के बाद छपे हुए पन्नों को जिल्दसाजी के विभाग में भेज दिया जाता है जहां उन्हें सेक्शनों (जुज़ों) में मोड़ा जाता है। अब इन सेक्शनों से सेटों को ठीक क्रम में लगाकर पीछे के मोड़ से सी दिया जाता है। इस प्रकार मोड़ कर इकट्ठे किये गये और सिले हुए पुस्तक-ब्लाकों को ऊपर, नीचे और दाईं ओर से (उर्दू के लिए बाईं ओर से) काटा जाता है। इससे पृष्ठ ऊपर से खुल जाते हैं और पुस्तक में सफाई आ जाती है। इसके बाद इस पर आवरण चढ़ाया जाता है जो कागज कार्ड या गत्ते का हो सकता है और उस पर कागज, कपड़ा या रैक्सिन आदि भी लगाया जाता है, खासकर तब जब बहुत मजबूत और टिकाऊ जिल्द ज़रूरी हो। जिन दिनों पुस्तकें कम होती थीं और चमड़ा सस्ता होता था, चमड़े का बहुत उपयोग किया जाता था।



पुस्तक का आवरण (कवर) बनाते हुए जो सख्त गत्ते पर चढ़ना है। कवर को लेई से चिपकाया जाता है।







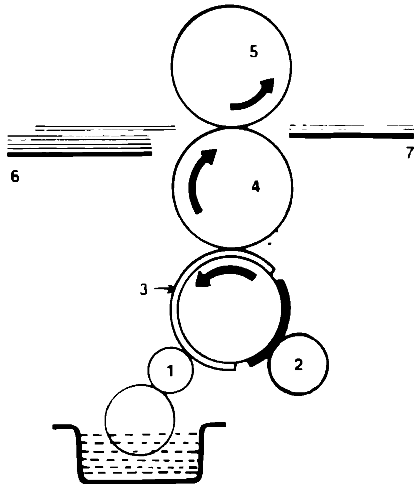
इस प्रकार की पुस्तक की सेंटर-स्टिच्ड जिल्दसाजी करते हुए। इसमें छपे हुए पृष्ठों के विभाग एक दूसरे के अंदर रखे जाते है और तब बाहर कवर रखकर बाहर की ओर से ही स्टेपल किया जाता है।

इस पुस्तक की तरह बहुत छोटी पुस्तकों में जिनमें 32-32 पृष्ठों के दो सेक्शन और कागज का आवरण होता है, एक सेक्शन को दूसरे के अंदर रखा जाता है। फिर दोनों को कागज के आवरण के बीच रखकर पीछे के मोड़ पर तार से सी दिया जा सकता है। कभी-कभी कुछ पुस्तकों के आवरण पर चमड़ा भी लगाया जाता है, खासकर तब जब बहुत मजबूत और टिकाऊ जिल्द जरूरी हो। जिन दिनों पुस्तकें कम होती थीं और चमड़ा सस्ता होता था, चमड़े का बहुत उपयोग किया जाता था।

आफसेट छपाई

लेकिन हमें यह बात नहीं भूलना चाहिए कि पुस्तक के हिंदी और अंग्रेजी संस्करण फोटोसेट किये गये थे। फोटोग्राफिक नेगेटिव से छपाई कैसे की जाती है ? यह छपाई आफसेट प्रक्रिया से की जाती है (गुटनबर्ग की प्रक्रिया लैटरप्रेस की प्रक्रिया कहलाती है।) आफसेट की छपाई एक समतल सतह (प्लेट) से की जाती है। लैटरप्रेस में छपनेवाली सतह (टाइप) न छपने वाली सतह से ऊपर उभरी हुई

आफसेट मुद्रण मशीन के सिद्धान्त।
रोलर (1) नीचे वाले रोलर में नमी लेता है जो कि पानी में घूमता रहता है। रोलर (2) में तेल-युक्त स्याही रहती है और वह रोलर (3) के साथ तभी लगता है जब उसे काले रंग में दर्शायी गयी प्लेट पर स्याही लगानी होती है। यह प्रक्रिया रोलर (1) द्वारा नमी देने के बाद ही होती है। जैसे ही ये रोलर तीर द्वारा दर्शायी गयी दिशाओं में घूमते है प्लेट अपनी इमेज को रोलर (4) की रबड़ वाली सतह पर उतार देती है जहाँ से यह रोलर (5) के दबाव के कारण कागज पर उतर जाती है। खाली कागज 6 की तरफ से आता है और वह छपकर 7 पर पहुँचता है। वास्तविक प्रक्रिया इससे कहीं जटिल होती है।

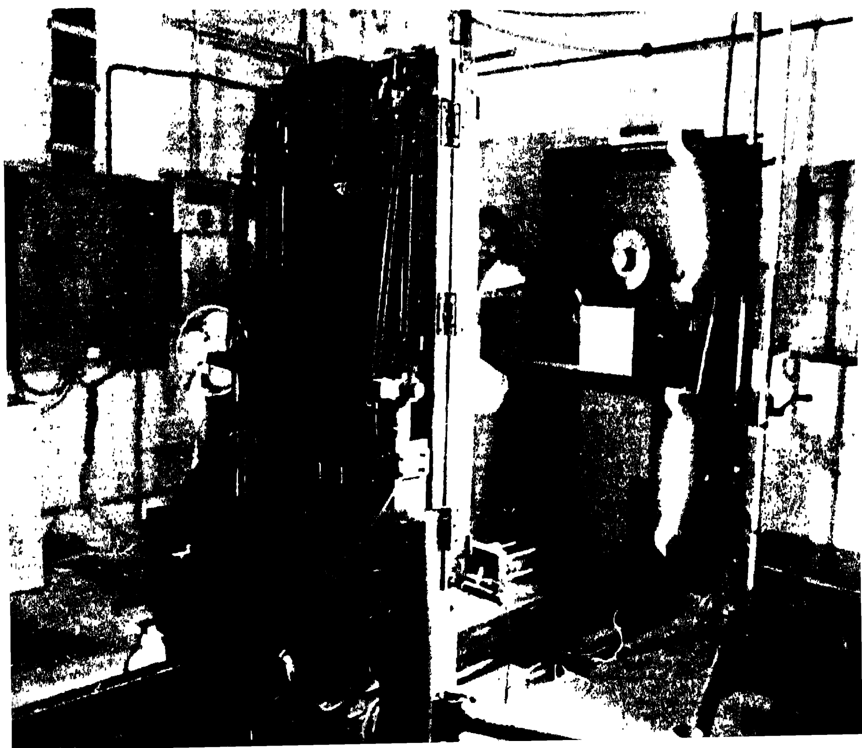


होती है लेकिन आफसेट में ऐसा नहीं होता। आफसेट-छपाई का आधार यह है कि तेल और पानी आपस में नहीं मिलते और वे एक-दूसरे को विकर्षित करते हैं या पीछे धकेलते हैं।

छपने वाली छवि (सामग्री और चित्र) को फोटोग्राफ की क्रिया से खास तौर पर बनायी गयी जिंक प्लेट पर उतारा जाता है। छवि वाला भाग तेलयुक्त होने के

कारण पानी को हटाता है और तेल मिश्रित स्याही को लेता है। इस तरह की मशीनों से छपाई करने के लिए पहले प्लेट पर पानी के रोलर चलाये जाते हैं और फिर स्याही के रोलर। पानी के रोलर चलने से छवि-रहित भाग गीला हो जाता है किंतु छवि वाला भाग गीला नहीं होता। स्याही का रोलर फेरने से गीले स्थान स्याही को नहीं पकड़ते और स्याही सिर्फ छविवाले हिस्से पर लगती है जिसने पहले पानी को अलग रखा था और सूखा था। इसके बाद एक और रोलर प्लेट पर फेरा जाता है और छवि इस रबड़ के रोलर पर उतर जाती है। यह रबड़-रोलर कागज के ऊपर चलता है और उस पर छवि को अर्थात सामग्री तथा चित्रों को छाप देता है।

आफसेट कैमरा बीच वाली विशाल प्लेट पर वह डिजाइन है जिसका आफसेट प्लेट बनाने के लिए फोटो लिया जाना है। इसे मशीन से ही आगे-पीछे किया जा सकता है। सामने जहाँ से डिजाइन पर तेज रोशनियाँ (फ्लड लैंप्स) पड रही हैं, वह कैमरा है।



चित्र और रंग

तुम शायद यह भी जानना चाहोगे कि चित्र कैसे छपते हैं।

लैटरप्रेस विधि से (गुटनबर्ग की विधि) चित्र जिंक या तांबे की प्लेट पर उतारे जाते हैं। फिर उन प्लेटों को लकड़ी के टुकड़ों पर चढ़ाया जाता है। उभरे हुए चित्रों को साथ छपने वाले टाइप की सतह तक लाया जाता है। प्लेट सहित लकड़ी के टुकड़े को ब्लाक कहते हैं। धातु की प्लेटों पर चित्रों को फोटोग्राफिक विधि से आशायनिक क्रियाओं से उभारा जाता है अर्थात छपने वाली सतह न छपने वाली सतह से ऊपर रहती है।

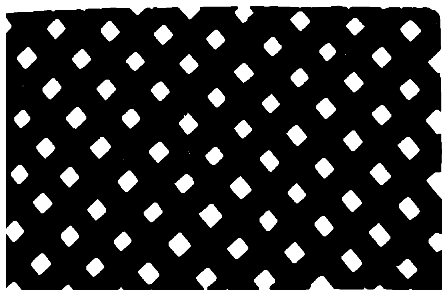
आफसेट से चित्र छापने की विधि भी इससे मिलती-जुलती है। किंतु इसमें छपने वाली सतह दूसरी सतह से उभरी हुई नहीं होती। दूसरी सामग्री की तरह छवि को सतह पर उतारा जाता है। वास्तव में यदि सामग्री और चित्र एक ही रंग में (आम तौर पर काले में) छपने हों तो दोनों को एक साथ सतह पर उतारा जा सकता है।

एक से अधिक रंग सरलतम रूप में, एक-एक करके छापे जाते हैं। यह तभी संभव है जब रंग सादे हों और एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हों जैसा कि इस पुस्तक के अंदर के चित्रों में है। किंतु यदि चित्रों में कई शेड या टोन और कई रंग हो (जैसा कि फोटोग्राफ और अधिकांश कलाकृतियों में होता है) तो छवि को

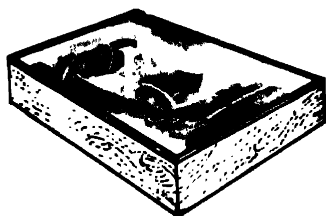
अनेक छोटे-छोटे बिंदुओं में पृथक करके टोन का प्रभाव लाया जाता है। कैमरे के लेन्स के सामने काँच की प्लेट पर आड़ी लाइनों वाली एक पतली जाली रखी जाती है। गाढ़े रंग वाले भागों में ब्लाक या प्लेट पर बड़े-बड़े और घने बिंदु उभरते हैं इसलिए वहाँ गाढ़ा रंग छपता है। हल्के रंग वाले भागों की छवि के बिंदु छोटे-छोटे और छितराये हुए होते हैं और सफेद या लगभग सफेद भागों में या तो गायब से हो जाते हैं। गाढ़े से हल्के में या हल्के से गाढ़े में परिवर्तन धीरे-धीरे हो सकता है और तेजी से या अधिक स्पष्ट रूप से भी जैसा कि किसी फोटोग्राफ को तेज प्रकाश और घनी छाया के साथ खींचना पड़ता है। यदि तुम समाचार पत्रों में छपे फोटोग्राफ को देखो तो तुम इन बिंदुओं की बानगी को साफ देख सकते हो। प्रवर्धक काँच (मैग्निफाइंग ग्लास) से यह और भी साफ हो जायेगा कि विभिन्न आकारों के ये बिंदु विभिन्न शेड या टोन बनाने में किस प्रकार काम करते हैं।

रंगीन फोटोग्राफ और कला-चित्रों को छापते समय हमारा वास्ता केवल टोन से नहीं पड़ता जैसा कि काले-सफेद फोटोग्राफ या स्केच छापते समय पड़ता है बल्कि हमें कई रंगों की टोन और शेड को उतारना होता है। सौभाग्य से इन सबको चार रंगों के मिश्रण में अलग-अलग किया जा सकता है। ये चार रंग हैं—पीला, नीला, गाढ़ा लाल (मजैंटा) और काला। ये चारों रंग विभिन्न अनुपात में मिलकर समग्र प्रभाव पैदा करते हैं। यदि हमारे पास इन चारों रंगों के ब्लाक या प्लेटें हों तो उन्हें एक के बाद एक छाप कर हम मूल रंगों को छाप सकते हैं।

रंगों को अलग करने के लिए मूल रंगीन फोटोग्राफ या चित्र के चार अलग-अलग फोटोग्राफ लेते समय हम फोटोग्राफिक फिल्टर का इस्तेमाल करते हैं। हर अवस्था में एक रंग अपनी शक्ति के अनुपात में फिल्म पर उतर आता है और शेष रंग फिल्टर द्वारा सोख लिये जाते हैं। इस प्रकार रंगों के चार नेगेटिव बन जाते हैं। यही नेगेटिव ब्लाक या प्लेटें बनाने के काम में लाये जाते हैं। जब ये ब्लाक पारदर्शीय स्याही में एक-दूसरे पर छापे जाते हैं तो मूल फोटोग्राफ या चित्र जैसा चित्र ही छप जाता है।

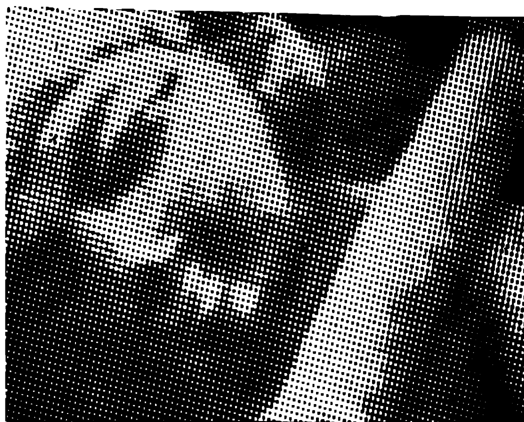


स्क्रीन का एक विशाल रूप

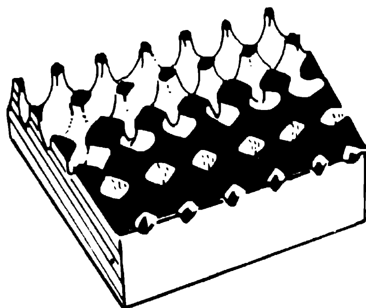


एक हाफ-टोन ब्लाक



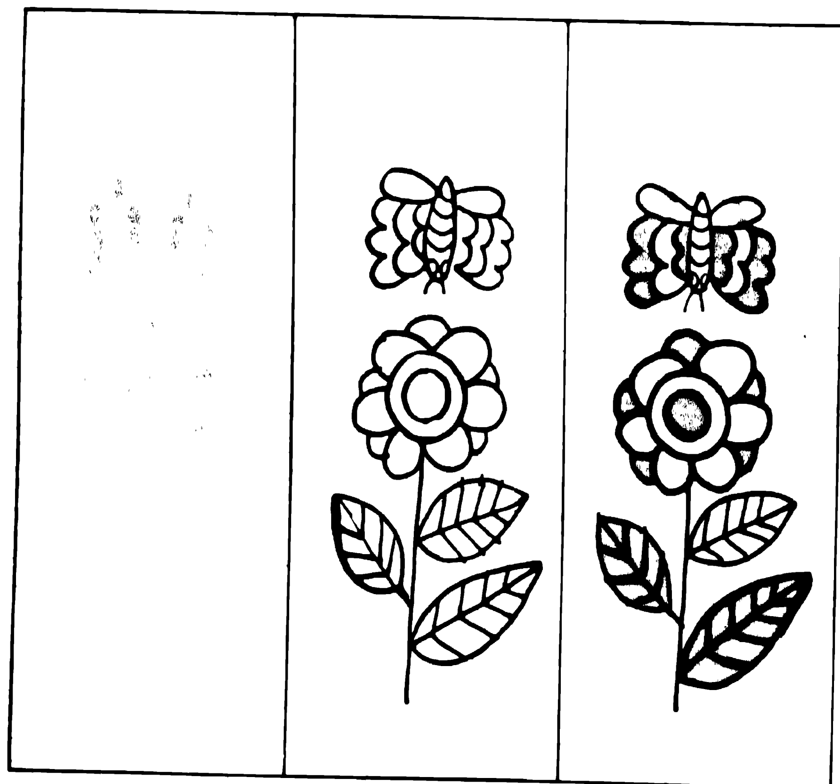


एक हाफ-टोन तस्वीर और उसके एक भाग का विशाल रूप (बिंदुओं का नमूना)।



यदि हाफ-टोन ब्लाक को काफी बड़ा करके किनारे से देखा जाये तो वह कुछ ऐसा ही दिखाई देगा।

खास प्रयोजनों के लिए (जैसे बहुमूल्य रंगीन कला-चित्र छापने के लिए) अधिक रंगों को भी अलग किया जा सकता है और इस प्रकार सात, आठ या उससे भी अधिक रंगों को छापा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारतीय मिनियेचर रंग-चित्रों में पाया जाने वाला असली सुनहरा रंग चार रंगों में छापने से फीका पीला हो जाता है। असली सुनहरे रंग का प्रभाव देने के लिए उसे असली या नकली सुनहरी स्याही से एक बार और छापना पड़ता है। दूसरी ओर यदि बिल्कुल ठीक-ठीक रंगों को उतारना बहुत आवश्यक न हो तो तीन रंग छापने से भी काम



दोरंगे लाइन-ब्लाक। पहले दोनों चित्रों में दोनों ब्लाकों का अलग-अलग चित्रण है और आखिर वाले चित्र में दोनों एक साथ छपे हुए हैं।

चल सकता है और काले रंग को अलग करने की ज़रूरत नहीं होगी। शेष तीन रंगों के मिलने से विभिन्न शक्तियों के ग्रे और काले रंग बन जाते हैं किंतु असली गाढ़ा काला नहीं बनता जो मूल चित्र की सही छपाई के लिए आवश्यक है।

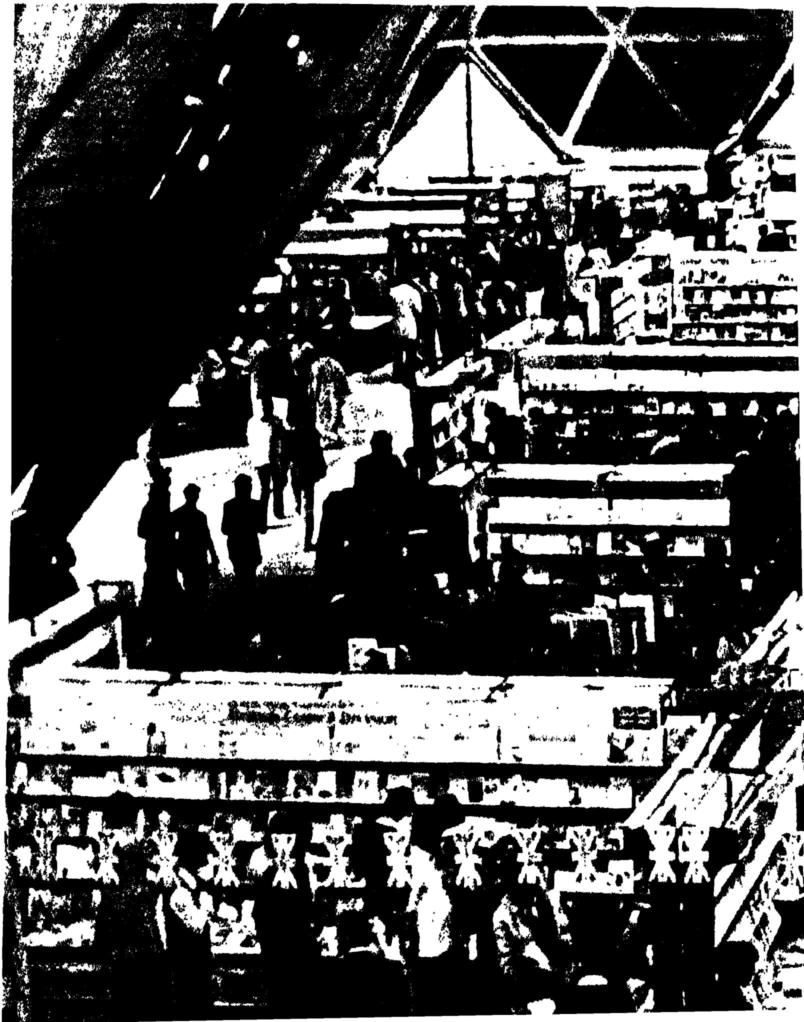
चार रंगों की मुद्रण की विधि पुस्तक के चौथे आवरण पर दिखायी गयी है।

इस पुस्तक के सभी भाषाओं के संस्करणों में लिखित सामग्री वाले पृष्ठों में दिये गये एक या दो रंगों वाले चित्रों और चार रंगों वाले आवरण को आफसेट विधि से छापा गया है। हिंदी और अंग्रेजी का लिखित सामग्री वाला भाग भी फोटोसेट होने के बाद आफसेट से छपा है। उर्दू के संस्करण में भी वह भाग आफसेट से छापा गया है किंतु इसमें कातिब (लिखने वाला) द्वारा हाथ से लिखी गयी सामग्री का फोटो उतारा गया है। कम से कम उर्दू के मामले में हम प्राचीन कला की एक महान परंपरा को बनाए हुए हैं, जिसमें सुंदर पुस्तकों का निर्माण न केवल लेखक करता था बल्कि बड़े प्यार से लिखने वाला कातिब भी उनका निर्माता होता था।

किंतु पुराने समय और आजकल के समय में एक अंतर है। आज हम कातिब द्वारा लिखी गयी पुस्तक के अनगिनत प्रतियां तैयार कर सकते हैं और पहले जहां पुस्तकें कुछ खास लोगों को ही मिल पाती थीं वहां आज हर चाहने वाले को पुस्तकें उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

सबके लिए पुस्तकें:

वर्ष 1976 में प्रकाशित यूनेस्को के आंकड़ों के अनुसार भारत में 1975 के दौरान 12,708 नयी पुस्तकें छपीं। इसका अर्थ हुआ दस लाख लोगों के लिए बीस पुस्तकें छपीं। सारे विश्व के लिए यह आंकड़े 182, विकसित देशों के लिए



346, विकासशील देशों के लिए 90 और अरब देशों को छोड़कर शेष एशिया के लिए 62 हैं। हम इस क्षेत्र में कितना पीछे हैं। वास्तव में 1963 में भारत के आंकडे 1965 से कुछ ज्यादा थे (दस लाख लोगों के लिए 27 नयी पुस्तकें)

तीसरे विश्व पुस्तक मेले का एक दृश्य, दिल्ली, फरवरी 1978



कागज की कमी और उसकी कीमतों में वृद्धि के कारण कम पुस्तकें छपीं। अब इस स्थिति पर काबू पा लिया गया है। लेकिन नयी पुस्तकों की संख्या में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है।

1978 में आयोजित विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर



इस दुखद स्थिति के कई कारण हैं। एक तो गरीबी। दूसरा कारण है निरक्षरता। लगभग 70 प्रतिशत लोग पढ़-लिख नहीं सकते हैं। ये दोनों कारण एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि हम एक को समाप्त करना चाहते हैं तो दूसरे को भी समाप्त करना होगा। इन दोनम को समाप्त करने के लिए पुस्तकें बहुत ज़रूरी हैं।

हमें सब तरह की पुस्तकें चाहिए। सब तरह के लोगों के लिए, सब मौकों और सब मनस्थितियों के लिए। वर्तमान समस्याओं से संबंधित पुस्तकें, सोचने की प्रेरणा देने वाली पुस्तकें, हंसानेवाली पुस्तकें, कहानी की पुस्तकें, हाबी—पुस्तकें सबकी हमें ज़रूरत है। किसानों को ऐसी पुस्तकें चाहिए जो उन्हें मिट्टी और फसलों के बारे में बता सकें। हवाई जहाज के पायलटों को ऐसी पुस्तकें चाहिए जो उन्हें विमान-चालन की नयी जानकारी दें। इसी प्रकार सैकड़ों प्रकार की पुस्तकों की हमें ज़रूरत है।

पुस्तकें हमें अपने आपको समझने में, दूसरों को समझाने में, अपनी दुनिया को और अपने काम को समझने में मदद देती हैं। एक बार हाथ में आने पर वे हमारी हो जाती हैं। हम उन्हें पढ़ सकते हैं, बार-बार पढ़ सकते हैं और जब चाहें तब उठा कर एक तरफ रख सकते हैं।

फिल्म, नाटक या गीत की तरह पुस्तकें अच्छी भी हो सकती हैं और बुरी भी। वे उकताने वाली भी हो सकती हैं और मज़ेदार भी। पुस्तकें समझने में आसान भी हो सकती हैं और कठिन भी। लेकिन एक कहावत है कि एक आदमी का भोजन दूसरे के लिए जहर भी हो सकता है। जो पुस्तक मुझे अच्छी लगती है, वह तुम्हारे लिए बिल्कुल मामूली हो सकती है। जो पुस्तक तुम्हें रोचक लगती है, हो सकता है कि वह मेरे लिए बोर साबित हो।

बुरी पुस्तक वह है जो उस बात को ठीक से नहीं कह पाती जिसे वह कहना चाहती है (चाहे लेखक का आशय कितना ही अच्छा क्यों न हो) इसके अलावा ऐसी पुस्तकें बुरी होती हैं जो जानबूझ कर बुरी भावनाएं, बुरे विचार फैलाती हैं और ऐसे काम करने को उकसाती हैं जिन्हें सभ्य समाज बुरा मानता है। उदाहरण के लिए एक पाठ्यपुस्तक इसलिए बुरी हो सकती है कि उसमें रखे गये विचार अस्पष्ट हैं और भाषा गलत है जो विद्यार्थियों की मदद करने की जगह उन्हें भ्रम में डालती है। भली प्रकार लिखी गयी पुस्तक भी बुरी हो सकती है यदि उसमे कही गयी बाते

गलत हों और भ्रम में डालने वाली हों। पूर्वाग्रहों और गलतफहमियों को फैलाने वाली पुस्तकें भी बुरी होती हैं और यदि इससे झूठ का प्रचार होता हो तब तो निश्चय ही यह बुरी है। लेकिन हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम किसी पुस्तक को सिर्फ इसलिए बुरा न कहें कि वह हमें पसंद नहीं आयी या उसमें कही गयी बातों से हम सहमत नहीं है।

कलकत्ता के प्रसिद्ध पुस्तक बाजार 'कालेज स्ट्रीट' में सड़क के किनारे लगे बुक-स्टाल।



पुस्तकें प्राप्त कैसे करें

पुस्तकें अच्छी हों या बुरी, मिलती बहुत कम हैं, विशेष रूप से हमारी अपनी भाषाओं में। बहुत से लोग जो पुस्तकें पढ़ सकते हैं, ऐसी पुस्तकें भी प्राप्त नहीं कर सकते जो मिलती हैं। कहने का मतलब यह है कि उनकी पुस्तकों तक पहुंच नहीं है।

पुस्तकें मांगना और चुराना तो ठीक नहीं है। यदि हम भेंट में पुस्तकें प्राप्त करने की बात छोड़ दें तो फिर पुस्तकें प्राप्त करने के दो ही रास्ते रह जाते हैं—खरीदना या उधार लेना।

हम सब पुस्तकें खरीदना चाहते हैं या हमें खरीदने की ज़रूरत पड़ती है। यदि विद्यार्थी के पास पैसों की कमी न हो तो वह पाठ्यपुस्तकें अवश्य खरीदना चाहेगा। वह अपने लिए शब्दकोश और एटलश भी खरीदना चाहेगा। किंतु इन पुस्तकों के अतिरिक्त हम अपनी दूसरी मनपसंद पुस्तकों का संग्रह भी करना चाहते हैं ताकि हम जब मरजी उन्हें पढ़ सकें। इस मनपसंद संग्रह में कुछ पुरानी मनचाही पुस्तकें होंगी और कुछ नयी जिन्हें हम बार-बार पढ़ना चाहते हैं, जिनमें हम बार-बार डूबना चाहते हैं।

लेकिन हम में से बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनके पास अपनी ज़रूरत की सारी पुस्तकें खरीदने के लिए पैसा होता है। इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों को हम एक विशेष समय पर, विशेष प्रयोजन के लिए पढ़ना चाहते हैं, जैसे स्कूल के काम में मदद के लिए। कभी हम किसी पुस्तक के एक हिस्से को ही देखना चाहते हैं। इसका रास्ता है मित्रों और पुस्तकालयों से पुस्तकें उधार लेना। सच बात तो यह है कि तुम और तुम्हारे दोस्त मिल जाएं तो तुम केवल वही पुस्तक खरीदो जो दूसरे के पास न हो। इस तरह तुम्हारे निजी पुस्तकालय में जितनी पुस्तकें होंगी उनसे कहीं अधिक पुस्तकें तुम पढ़ सकोगे।

पुस्तकें बांट कर पढ़ना

यदि तुम पुस्तकें उधार लेते हो तो दूसरों को पुस्तकें उधार देने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। हम में से कुछ लोग इस काम में हिचकिचाते हैं। किसी स्वार्थ के कारण नहीं बल्कि इस डर से कि पुस्तक खो जायेगी या मैली हो जायेगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है। लेकिन यदि हम अपनी पुस्तकों या उधार ली हुई पुस्तकों के बारे में सावधानी बरतें तो प्रायः पुस्तकें खराब नहीं होतीं। इसलिए यह खतरा उठाया जा सकता है खासकर अपने विश्वासपात्र मित्रों के साथ।

जब तुम किसी पुस्तक को पढ़ते हो, चाहे वह कहानी की ही पुस्तक हो तो तुम्हें आसपास की बातें सुनाई नहीं देती। अगर तुम इस पर जरा ध्यान से सोचो तो तुम्हें पता चलेगा कि जब हम किसी पुस्तक को पढ़ते हैं तो उसके लेखक के साथ बातचीत कर रहे होते हैं। यह बातचीत पुस्तक अलग रख देने के बाद भी काफी समय तक चलती रहती है। कुछ दिन बाद जब तुम फिर उस पुस्तक को पढ़ने लगोगे तो वह बातचीत आगे शुरू हो सकती है। पुस्तक के पृष्ठों में लेखक के प्रश्न उत्तर और विचार सभी होंगे। अच्छी पुस्तक का जादू यह है कि जब तुम पढ़ी हुई बात पर विचार करते हो लेखक से बातचीत करते हो तो तुम्हें लेखक से नये जवाब और नये स्पष्टीकरण मिलते जाते हैं। तुम उस पुस्तक को पहले से ज्यादा समझने लगते हो। जब तुम्हारे दोस्त उसी को पढ़ेंगे तो वे भी इस बातचीत में शामिल हो जाते हैं और तब उस पुस्तक का अधिक आनंद ले सकोगे और उसे और अच्छी तरह समझोगे।



पुस्तकालय

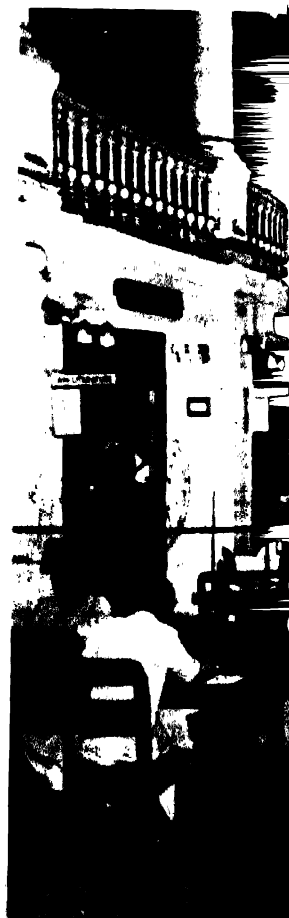
लोगों को पुस्तकें उपलब्ध कराने की दृष्टि से पुस्तकालय सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। उन देशों में भी जहाँ लोग काफी पुस्तकें खरीद सकते हैं तथा खरीदते हैं। वस्तुतः जितनी अधिक पुस्तकें लोग खरीदते हैं, पुस्तकालय की सुविधाओं की मांग उतनी ही बढ़ती है। इस भूख को जितना शांत किया जाता है, उतनी ही बढ़ती है।

इस स्कूल के बच्चे हमारे देश के अन्य बच्चों से अधिक भाग्यशाली है। इनके लिए एक भरा-पूरा पुस्तकालय है।



अधिकांश प्रगतिशील देशों ने अपने लिए राष्ट्रव्यापी निशुल्क पुस्तकालयों का लक्ष्य निर्धारित किया है और इंग्लैंड जैसे कुछ देशों ने इसे प्राप्त भी कर लिया है। वर्ष 1976 में इंग्लैंड और वेल्स में प्रति व्यक्ति 11.4 पुस्तकें पुस्तकालयों से उधार दी गयीं। स्काटलैंड और उत्तर आयरलैंड के लिए यही आँकड़े क्रमशः 9.4 और 6.6 थे।

रूस में 1976 के दौरान 30,000 पुस्तकालय थे अर्थात एक हजार या उससे भी कम लोगों के लिए एक पुस्तकालय था। वहां की जनसंख्या 30 करोड़ है और उनमें से पुस्तकों का उपयोग करने वाले 18 करोड़ लोग हैं। दोनों देशों में पुस्तकालय सेवा निशुल्क है।



भारत में यद्यपि हमने ऐसा ही लक्ष्य रखा है लेकिन वहाँ पहुंचने में हमें बहुत लंबा रास्ता तय करना पड़ेगा। हमारा देश बहुत बड़ा है और उसकी जनसंख्या भी बहुत है। इसके अतिरिक्त देश में गरीबी है। हमने कई बहुत ज़रूरी काम शुरू किये हैं, जैसे सभी लोगों को पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना और सभी बच्चों को कम से कम प्रारंभिक शिक्षा की सुविधाएं जुटाना। इन कामों में से एक काम राष्ट्रव्यापी पुस्तकालय स्थापित करना भी है।

इतने सारे काम हाथ मे होने के कारण हम अपनी केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार या स्थानीय सरकार से यह आशा नहीं कर सकते कि वे पुस्तकालयों के लिए उतना ध्यान या रुपया दें जितना हम चाहते हैं। ऐसी स्थिति में पुस्तकों द्वारा अपने समाज की सहायता करने की जिम्मेदारी उन लोगों पर आती है जो पुस्तकों के महत्व को समझते हैं।

नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता का मुख्य रीडिंग रूम। यह भारत का मुख्य रिकार्ड पुस्तकालय है। भारत में छपी प्रत्येक पुस्तक को कानूनन यहाँ भेजना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दो अन्य 'लीगल डिपॉजिट' पुस्तकालय हैं—सेंट्रल लाइब्रेरी, बंबई व कान्नेमारा लाइब्रेरी, मद्रास।



हम क्या कर सकते हैं? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि हम जहां भी हों, स्कूल में, दफ्तर में या घर में, इस दिशा में हमें काम शुरू कर देना चाहिए। स्कूलों में जहां पुस्तकालय नहीं है या उनकी व्यवस्था ठीक नहीं है, विद्यार्थी अपने अध्यापकों से मिलकर पुस्तकालय स्थापित कर सकते हैं, या उनकी व्यवस्था ठीक कर सकते हैं। जहां हम रहते हैं, यह उनकी व्यवस्था ठीक कर सकते हैं जहां हम रहते हैं वहां भी हमें बच्चों और बड़ों दोनों के लिए औपचारिक या अनौपचारिक पुस्तकालय या पुस्तक-क्लब बनाने चाहिए। हमारे देश में यह काम कई स्थानों पर हुआ है और यदि हम कोशिश करें तो कई अन्य स्थानों पर भी इस तरह की व्यवस्था की जा सकती है।

किंतु पुस्तकालयों के लिए हमें पुस्तकों की ज़रूरत होगी। भिन्न-भिन्न प्रकार की नयी पुस्तकें लगातार आती रहनी चाहिएं और हमारे यहां इसकी बहुत कमी है, विशेषकर भारतीय भाषाओं में। यदि हम पाठ्यपुस्तकों को छोड़ दें तो बच्चों के लिए साहित्य की पुस्तकें भारत में बहुत कम प्रकाशित होती हैं। बड़ों के लिए भी अधिकांश भाषाओं में विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की संख्या सीमित ही जाती है।

कहा जाता है कि मांग के अनुसार पूर्ति होती है। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार की पुस्तकें काफी संख्या में इसलिए नहीं हैं कि हमारे यहां उनकी काफी मांग नहीं है। नेशनल बुक ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० एस. गोपाल ने एक बार अपने भाषण में कहा था—"यह कहना तो मुश्किल है कि भारत में पुस्तकों की भूख है या नहीं, लेकिन यहां पुस्तकों का अकाल ज़रूर है।" हमारे यहां काफी पुस्तकें नहीं है। एक अनपूछा और अनबूझा प्रश्न हमारे सामने यह है कि क्या हमारे यहां इसलिए पुस्तकें नहीं हैं कि हमें अधिक पुस्तकों की ज़रूरत नहीं है, अधिक पुस्तकों की भूख नहीं है?

तुम्हारा क्या जवाब है?—अपने संदर्भ में भी और देश के संदर्भ में भी?

